प्रथम अध्याय

1. महाकवि 'भट्टि' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व-

दक्षिण भारत में यदि भारवि छठी शताब्दी ई. के उत्तरार्ध में अपनी कीर्ति कौमुदी से सम्पन्न थे तो उसी काल में पश्चिम भारत में भट्टि की यशः सुरभि से सुवासित था। अपने महाकाव्य 'रावणवध' को इन्होंने व्याकरण और अलङ्काशास्त्र से परिपूर्ण किया है। उदाहरणों के द्वारा व्याकरण सिखाने का इनका उद्देश्य इस महाकाव्य के द्वारा सम्पन्न हुआ है। इनका महाकाव्य अपने मूल नाम से कम ही जाना जाता है, लेखक के नाम के आधार पर इसे प्रायः '**भट्टिकाव्य**' ही कहा जाता है।

व्यक्तित्व-महाकवि भट्टि अपने समय के असाधारण विद्वान थे। व्याकरण और काव्यशास्त्र के पण्डित भट्टि, वल्लभी के राजा श्रीधरसेन के आश्रित कवि थे। संभवतः राजा श्रीधरसेन की प्रार्थना पर भट्टि ने ऐसे काव्य की रचना की जो व्याकरण तथा अलङ्कारशास्त्र की शिक्षा के लिए उपयुक्त हो। अतएव अंतिम श्लोक में प्रजावत्सल राजा को आशीर्वाद देते हुए ग्रंथ की समाप्ति की गई है-

काव्यमिदं विहितं मया वल्भ्यां श्रीधरसेन-नरेन्द्र-पालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य प्रेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्।।(भट्टि २२/३५)

यह काव्य व्याख्या से ही समझा जा सकता है; बुद्धिमानों के लिए तो यह अत्यधिक आनन्द का विषय है, किन्तु मेरी (भट्टि) विद्वत्प्रियता के कारण मूर्ख जन इसमें मारे ही गये। (उनका प्रवेश यहाँ नहीं हो सकता) इस काव्य की रचना का उद्देश्य अश्वघोष के काव्यों के समान है, जहाँ आनन्द और लाभ का समन्वय किया गया है। एक ओर काव्य का आनन्द लिया जाये और दूसरी ओर व्याकरण के नियमों तथा प्रयोगों को आत्मसात् किया जाये, भट्टि ने यही लक्ष्य रखा था। भाषा को सजाने का साधन तो व्याकरण अवश्य है किन्तु भट्टि ने भाषा पर बहुधा व्याकरण को इतना प्रभावी बना दिया है; काव्य के आरम्भ में दशरथ का वर्णन करते हुए अनेक लघुवाक्य लुङ्लकार के 'सिच्' वाले रूपों से भरकर एक ही पद्य में कवि ने छोड़ रखे हैं-

सोऽध्यैष्ट वेदांस्त्रिदशानयष्ट पितृनपारीत् सममंस्त बन्धून्।
व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नोतौ समूलघातं न्यवधीदरींश्च।।(१/१)

यहाँ अध्यैष्ट (अध्ययन किया), अयष्ट (यज्ञ किया), अपारीत् (तृप्त किया), सममंस्त (आदर किया), व्यजेष्ट (जीत लिया), अरंस्त (रम गया), न्यवधीत् (मार दिया)-ये सभी लुङ् के प्रयोग हैं, जिनमें च्लि विकिरण को सिच् आदेश है।

कृतित्त्व-भट्टिकाव्यम् (रावणवधम्) महाकवि भट्् की एकमात्र उपलब्ध रचना है। इसका मूल नाम 'रावणवध' है, किन्तु लेखक के नाम से (भट्टिकाव्य) यह अधिक प्रसिद्ध है। रामायण की सम्पूर्ण कथा पर आश्रित २२ सर्गों का यह महाकाव्य है। इसमें १६२४/१६२५ पद्य है। इसमें राम-जन्म से लेकर लंका विजय और रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। इस काव्य की स्वरूप की दृष्टि से चार काण्डों या भागों में विभक्त किया गया है-

१. प्रकीर्णकाण्ड-(१ से ५ सर्ग)   २. अधिकारकाण्ड-(६ से ९ सर्ग)

३.	प्रसन्नकाण्ड-(१० से १३ सर्ग)	४. तिङ्न्तकाण्ड-(१४ से २२ सर्ग)

भट्टि ने इस काव्य की प्रशंसा में यह पद्य दिया है-

व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्।

हता दुर्मेधसश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतया मया।।(भट्टिकाव्यम् २२/३४)

2. भट्टिकाव्यम् की विषयवस्तु तथा विषयवस्तु का वर्गीकरणः-

व्याकरणौषधि-मिश्रित यह भट्टिकाव्य इतिहास प्रधान न होकर व्याकरण सम्मत प्रयोगों के निदर्शन की महत्ता से अधिक समन्वित है। महाकवि ने रामजन्म से प्रारम्भ कर उनके राज्याभिषेक तक की घटनाओं का व्याकरण, प्रबल-प्रखर बुद्धि से संक्षपीकरण कर २२ सर्गों में ही उपनिबद्ध किया है, साथ ही अध्ययन की सुगमता को ध्यान में रखकर कवि ने इसे चार काण्डों में भी विभक्त किया है।

(क) भट्टिकाव्य के चतुष्काण्ड एवं उसके विभाजन का आधारः-

1. प्रकीर्ण काण्ड, 2. अधिकारकाण्ड, 3. प्रसन्नकाण्ड, 4. तिङ्न्तकाण्ड

1. **प्रकीर्ण काण्ड**-यहाँ 'काण्ड' शब्द अनेकार्थ हैं। इसका परिचय अन्यत्र सर्ग, पर्व, अङ्क, जवनिका, उद्योत आदि के रूप में प्राप्त होता है। वस्तुतः 'काण्ड' का अभिप्राय 'उपखण्ड' से है। २२ सर्गात्मक यह महाकाव्य सर्वप्रथम प्रकीर्णात्मक स्वरूप में है। इसमें विविध व्याकरणात्मक एवं महाकाव्यात्मक विशेषतायें पर्याप्त रूप में पदे-पदे दृष्टिगत होती है। इस प्रकार प्रथम पांच काण्डों को 'प्रकीर्णकाण्ड' की मान्यता प्राप्त हुई है। इतिवृत्त के आधार पर इसमें रामाविर्भाव से लेकर सीताविवाह, राम प्रवासया, रामवनप्रयाण, चरणपादुकादन, शूर्पणखानिग्रह, त्रिशिरादि निधन एवं सीतापहरण तक की कथा वर्णित है। वैयाकरणिक प्रयोग की दृष्टि से चार सर्ग तक व्याकरणात्मक पद्धति का अभाव देखा जाता है। फिर भी काव्यत्व-दृष्टिकोण को कवि के द्वारा भरपूर अपनाया गया है। द्वितीय सर्ग में तो शरद्-वर्णन प्रसाद गुणोपेन अपनी सुमधुरता से काव्यप्रयोजन 'सद्यः पर निर्वृत्तये' को स्पष्टतया द्योति करता है। पंचमसर्ग में आधिकारिक सूत्रों का यत्र-तत्र समावेश हो गया है। किन्तु बहुतायत पद्यप्रकीर्ण काण्ड से सम्बन्धित है। आधिकारिक सूत्रों में टाधिकार एवं आमधिकार का संकेत मिलता है। पञ्चम सर्ग में प्रथम (टाधिकार) के अंतर्गत 4 श्लोक (97-100) तथा द्वितीय (आमाधिकार) के अंतर्गत भी 4 श्लोक (104-107) ही प्राप्य है।

2. **अधिकारकाण्ड**-आधिकारिक सूत्रों की बहुलता वाला यह काण्ड स्वनाम से सार्थक रहा है। पूर्वोल्लिखित सर्गों को छोड़कर क्रमशः ६, ७, ८ तथा ९वाँ सर्ग 'अधिकारकाण्ड' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार इन चारों सर्गों में सुग्रीव-राज्याभिषेक, सीता-खोज, अशोकवाटिकोच्छेदन तथा पवनसुतसंयम की कथा का प्रसंग अभिवर्णित है। इसमें भी प्रकीर्णकाण्डवत् अनेक पद्य प्रकीर्ण हैं। षष्ठसर्ग के श्लोक संख्या ११-१४ तक तथा ४०-४७ तक पद्य प्रकीर्ण हैं। अधिकारकाण्ड में प्रमुखतया क्रियाप्रयोग सम्बन्धी आधिकारिक सूत्रों (नियमों) का वर्णन प्राप्त होता है। महाकवि का लक्ष्य सूत्रों की व्याख्या करना न होकर अपितु उनके शुद्ध वैयाकरणिक प्रयोगों का निर्देशन कर महत्व प्रास करना रहा है। चूंकि सर्वप्रथम नवव्याकरणात्मक काव्य-शैलीप्रवर्तक की ख्याति प्रास

होने से इनके द्वारा व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग समुचित न समझकर सहज एवं सरल शैली 'उदाहरणात्मक' ही अपनायी गयी है।

3. **प्रसन्नकाण्ड**–महाकवि भट्टि ने इस काण्ड को 'नाम्ना' सार्थक कर दिखाया है। यह भी कवि की कवित्वशक्ति का परिचायक काण्ड है। इसके अन्तर्गत १०वें से लेकर १३वें सर्ग तक की गणना की जाती है। कवि ने इसमें सीतादर्शन से लङ्कागत प्रभातवर्णन, रावणोपदेश तथा सेतुबन्ध तक की कथावस्तु का वर्णन किया है। वस्तुतत: यह अलङ्कार विधायक 'काण्ड' के नाम से भी जाना जाता है। दशम सर्ग शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार का वृहद् परिचय देता है। इसके प्रदर्शन हेतु महाकवि ने उदाहरणों को व्यवहारोपयोगी मानकर उनका (अलङ्कारों का) स्वरूप चित्रण किया है। 'यमक' अलङ्कार के जितने (अर्थात् बीस) भेद-प्रदर्शन भट्टिकाव्य में मिलते हैं, अन्यत्र इसके इतने भेद कम मिलते देखे जाते हैं। ग्यारहवां सर्ग माधुर्यगणगमुम्फितलङ्कागत प्रभातवर्णन का मनोरम श्रृङ्गारिक वर्णन पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर दिखाता है। बारहवाँ भाविक (अलङ्कार) प्रधानसर्ग है। इसके साथ ही तेरहवां सर्ग श्लेष भेद के अन्यतम् स्वलप 'भाषासम' का अद्वितीय प्रदर्शन करता है। इस प्रकार काव्यत्व के दृष्टिकोण से यह महत्त्वपूर्ण काण्ड है।

4. **तिङन्तकाण्ड**– इसके अन्तर्गत प्रधान-सेनापतिवध, मेघनाद युद्ध वर्णन, दशाननवध विभीषण विलाप एवं उसका राज्याभिषेक, सीता संशोधन एवं राज्याभिषेक तक का कथानक सन्निहित है। इस काण्ड का नाम भी सार्थक ही प्रतीत होता है। इसमें लौकिक संस्कृत व्याकरण के परस्मैपद एवं आत्मनेपद के प्रयत्नों वाले समस्त लकारों का प्रयोग सर्गानुक्रम में १४वें सर्ग से लेकर २२वं तक (कुल ९ सर्गों में) किया गया है, अर्थात् एक सर्ग में एक लकार के प्रयोग ही हुए हैं। जिसमें आर्शीर्लिङ्ग का विधिलिङ् में अन्तर्भाव देखा जाता है, क्योंकि ये दोनों एक ही अर्थ का निष्पादन करने वाले होते हैं। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र को ध्यानस्थ कर अतिसूक्ष्मता का सहारा लिया गया है।

(ख) भट्टिकाव्य की कथावस्तु एवं उनके विभाजन (सर्ग) का आधार:-

भट्टिकाव्य के इतिवृत्त का मूलाधार आदि कवि वाल्मीकिकृत 'रामायण' है। महाकवि भट्टि ने श्रीराम के प्रादुर्भाव से प्रारम्भ कर अध्योया नरेश के रूप में उनके राज्याभिषेक तक का वृत्तान्त कुल २२ सर्गों में उपनिबद्ध किया है। जिसमें श्लोकों की संख्या विभिन्न टीकाकारों ने पृथक्-पृथक् दी है। इसमें १६२४ या १६२४ संख्या बताई गई है। भट्टिकाव्य में सर्गों का विस्तार कथा के सम्यक् वर्णन पर नहीं, अपितु व्याकरणोपयोगी प्रयोगों पर आधारित है। यही कारण है कि यह 'रावणवधम्' की अपेक्षा कृतिकार के नाम पर 'भट्टिकाव्यम्' महाकाव्य रूप में ही अधिक ख्याति प्राप्त हैं। फिर भी कवि ने महाकाव्य के स्वरूप निष्पादन में किंचित् न्यूनता नहीं आने दी है। प्रस्तुत काव्य का कथा परिचय सारत: नीचे दिया जा रहा है।

1. **प्रथम सर्ग (रामाविर्भाव):**-सर्वप्रथम वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के माध्यम स[1] कवि ने भगवा विष्णु के अवतार श्री राम के पिता राजा दशरथ के गुणों का वणन। उनकी राजनधानी अयोध्या का

वर्णन, कौशल्या-कैकयी-सुमित्रा से विवाह विधि का वर्णन, पुत्र इच्छा के लिए यज्ञ का सम्पादन। उसके बाद राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न की उत्पत्ति। इनकी शिक्षा के बाद विश्वामित्र का राक्षसों के भय से बचने के लिए राम को मांगने के लिए दशरथ के पास जाना तथा राजा-मुनि संवाद के अनन्तर मुनि की इच्छा होने के कारण राजा का ऋषि शाप से डरकर राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के लिए समर्पित करना है।

२. **द्वितीय सर्ग (सीता विवाह)**-इस सर्ग में राम का राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिए महल से बाहर निकलकर वन की ओर प्रस्थान करने पर युद्ध प्रस्थान के लिए उचित शरद ऋतु का १९ पद्यों में वर्णन किया गया है। उसके बाद विश्वामित्र द्वारा राम को अस्त्र विद्या प्रदान करना, राम के द्वारा ताड़कावध, सिद्ध आश्रम में उपस्थित यज्ञ का आरम्भ तथा उसके विघ्नार्थ मारीच आदि राक्षसों की उपस्थिति, राम-मारीच संवाद। राक्षसों और मारीच को मारने के बाद मुनिजनों द्वारा प्रशंसित राम को मैथिली यज्ञभूमि ले जाना। वहाँ रामजी के द्वारा धनुष भंग करना। मिथिला राजदूत के द्वारा बुलाने पर दशरथ की उपस्थिति में चारों भाईयों की क्रमश: सीता, माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्ति नामक चारों राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण संस्कार, राजा दशरथ के अयोध्या प्रस्थान करने पर मध्यमार्ग में परशुरामजी का आगमन इसके अनन्तर, परशुरामजी के परास्त होने पर राम की जय-जयकार करती हुई सेना का अयोध्या प्रवेश होता है।

३. **तृतीय सर्ग (चरण पादुका-दान)**-इस सर्ग में महाराज दशरथ के द्वारा प्रजाप्रिय व सभी जनों के उपकारक राम की राज्याभिषेक घोषणा व राज्याभिषेक पूर्व ही कैकयी द्वारा राम के लिए वनवास और भरत के लिए राज्याभिषेक का वर माँगने के कारण राम को वन जाने का आदेश दिया जाता है। इसके बाद पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए राम का वनगमन। उनके वियोग में राजा का स्वर्गवासी होना। माताओं के अवसाद में होने पर, दूतों के द्वारा भरत को राजा की अंत्येष्टि क्रिया के लिए बुलाया गया। इसके अनन्तर भरत अपने राज्याभिषेक को छोड़कर राम को वापस लाने के लिए वन गए। मध्य मार्ग में भारद्वाज मुनि के द्वारा विविध प्रकार का आतिथ्य ग्रहण करके, चित्रकूट पर्वत स्थित राम से मिलने जाते हैं। वहाँ राजा के शोक का वृतान्त सुनाने के अनन्तर राम-भरत संवाद। अंत में युक्ति युक्त बात कहने वाले भरत, रामजी की आज्ञा पाकर उनकी चरण पादुका लेकर अयोध्या की तरफ प्रस्थान किये।

४. **चतुर्थ सर्ग (दण्डकारण्य प्रवेश)**-भरत के लौट जाने पर रामचन्द्र जी अत्रि मुनि के तपोवन में गये। वहाँ सत्कार पाकर दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान किया। विराध नामक राक्षस का वध करके शरभंग मुनि के निर्देशानुसार सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में गये। वहाँ अपने द्वारा बनाई गई कुटिया में रामजी की विविध दिनचर्या का वर्णन इस सर्ग में किया गया है। साथ में मुनियों की रक्षा का वर्णन भी किया गया है। वही शूर्पणखा का वर्णन तथा लक्ष्मण द्वारा उसके नाक व कान को काटना इस प्रकार वह अत्यधिक क्रुध होकर राम-लक्ष्मण की निन्दा करती हुई खरदूषण नामक राक्षसों के साथ

आगमन। उनको राम लक्ष्मण के द्वारा अन्य राक्षसों के साथ मार गिराना और अंत में त्रिशिर नामक राक्षस का वध करना चतुर्थ सर्ग में चित्रित है।

५. **पंचम सर्ग (सीताहरणाख्य:)**–इसमें खर दूषण के विनाश के बाद शूर्पणखा का रावण को सीताग्रहण के लिए प्रेरित करना, रावण का मारीच की सहायता से सीताहरण करना तथा मार्ग में जटायु का विरोध करने पर रावण के द्वारा उसके पंख को छदना (काटना) वर्णित है।

६. **षष्ठ सर्ग (सुग्रीवाभिषेक:)**–इस सर्ग के प्रारम्भ में सीता के प्रति कामभाव से भरे रावण की मनोदशा का वर्णन किया गया है। सीतापरहरणजनित शोग्नि से दह्यमान राम का विलाप चित्रित है। ऐसे कष्टकर समय में मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करने वाले जटायु से राम को रावण–कृत सीताहरण का ज्ञान होना। जटायु का अंतिम संस्कार श्री राम द्वारा। तत्पश्चात् दीर्घबाहु नामक राक्षस का वध। दीर्घबाहु द्वारा सुग्रीव से मित्रता की परामर्शता। शबरी की कृतार्थता। ऋष्यमूलक पर्वत पर रामजी की हनुमान जी से भेंट। उनके सहयोग से राम जी की मैत्री सुग्रीव के साथ सम्पन्न हो जाती है। बालि वध। बालि–राम संवाद। बालि का अंतिम संस्कार। सुग्रीव का किष्किन्धा में प्रवेश।

7. **सप्तम सर्ग (सीतानवेषणम्)**–वर्षा ऋतु का वर्णन। शरद् ऋतु के आने पर भी सुग्रीव के प्रमाद को भङ्ग करने के लिए रामजी ने लक्ष्मण को प्रेरित किया। अपनी प्रमादवृत्ति से भयभीत सुग्रीव सीता को ढूँढने के लिए सभी दिशाओं में वानरों की सेना को भेजना। अङ्गदादि को दक्षिण दिशा में जाना निश्चित किया जाना। अङ्गद जाम्बवन्तादि समुद्र तैराकी में सफल हनुमान को सीता–खोज के लिए भेजने का प्रस्ताव करते हैं। इस प्रकार 'सीतान्वेषण' तथा 'मारूति–प्रेषण' इन दो नामों वाला सप्तम सर्ग समाप्त होता है।

8. **अष्टम सर्ग (अशोकवाटिका-विदारण)**–समुद्र को पार करते समय विघ्नार्थ आए हुए राक्षसों का वध किया। हनुमानजी ने मैनाक पर्वत का आतिथ्य स्वीकार किया। 'सुरसा' नामक राक्षसी के उदर में प्रवेश कर निकलते हुए, समुद्री मार्ग पारकर लङ्का पहुँचते हैं। तथा सीता खोज के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है। अन्ततोगत्वा अशोकवाटिका में सीता–दर्शन का लाभ। तत्पश्चात् उनके द्वारा राम जी की अभिज्ञान स्वरूप दी गई 'अंगूठी' उन्हें प्रदान की जाती है। और सीता की अभिज्ञानभूत उनकी चूडामणि ग्रहण करके, शत्रु के बल परीक्षण के लिए निकल गए। तत्पश्चात् अशोक वाटिका को भङ्ग करने का उपक्रम।

9. **नवम सर्ग (मारुति संयम:)**–वानर के द्वारा अशोक वाटिका को भंग करने पर रावण के इस बात को सुनकर ८० हजार सैनिकों के भेजने पर हनुमान के द्वारा उनका वध। उसके बाद अक्षकुमार का रावण ने हनुमानजी का वध करने के लिए भेजा। अक्ष कुमार वध। फिर मेघनाथ के द्वारा भेजे गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा हनुमान जी को ग्रहण करके रावण की सभा में उपस्थित किया। तब हनुमान–रावण संवाद। अंत में क्रोधित रावण के द्वारा हनुमान जी की पूंछ में आग लगाने की राक्षसों को आज्ञा देना।

10. **दशम सर्ग (लंका दहनम्)**–रावण के जलाने की आज्ञा देने के बाद हनुमानजी की पूंछ पर वल्कल, पटवस्त्र और कुश आदि तृणों से वेष्टित करके आग लगा दी गई। हनुमानजी द्वारा आकाश में उछलकर रावण की सुवर्णमयी लंका में आग लगा दी गई। इसके बाद हनुमानजी अशोक वाटिका में सीताजी के दर्शन करके राम के सम्मुख चले गए। हनुमानजी ने सीता प्राप्ति को बताते हुए, सीताजी के अभिज्ञान (निशानी) चूड़ामणि को धारण करते हुए रामचन्द्रजी को नमस्कार किया। तथा चूड़ामणि श्रीरामजी को प्रदान की। हनुमानजी के द्वारा रावण, उसकी नगरी (लंका) तथा वहाँ उनके द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन किया। रामलक्ष्मण और वानरों के समूह का महेन्द्र पर्वत को प्राप्त करना। महेन्द्र पर्वत और समुद्र के विषय में विस्तृत वर्णन। चन्द्र दर्शन। राम–लक्ष्मण संवाद।

11. **एकादशः सर्गः (प्रभात वर्णनम्)**–सूर्योदय के समय चन्द्रदेव द्वारा लङ्का की सुंदरियों से तुलनात्मक वर्णन। प्रातःकाल में लङ्का के युवक–युवतियों के क्रिया–कलापों का वर्ण्न। इसके अनन्तर लङ्का निवासियों का राजभवन में प्रवेश। रावण का सभा में प्रवेश। सभा भवन का वर्णन।

12. **द्वादशः सर्ग (रामं प्रति विभीषणागमन्)**–प्रातःकाल होने के अनन्तर विभीषण की माता कैकसी (नैकषी) ने विभीषण से रावण को शांत व उसके (रावण) द्वारा की गई दुर्नीतिका प्रतीकार करने को कहा अभीष्ट कार्य के सम्पादन के लिए विभीषण राजभवन गए। रावण द्वारा सभासद् राक्षसों के प्रशंसनीय कार्यों का वर्णन। विभीषण द्वारा नीतिपूर्वक भाषण का वर्णन। बुद्धिमान मातामह (नाना) माल्यवान् ने भी विभीषण का समर्थन किया और राजाराम की असाधारण महिमा का प्रकाशन भी किया। कुम्भकर्ण द्वारा नीति मार्ग का प्रदर्शन। विभीषण द्वारा रावण के लिए भव्य कर्त्तव्य का उपदेश। रावण द्वारा विभीषण की अवज्ञा। विभीषण द्वारा सभाभवन का त्याग। इसके अन्नतर रामजी ने विभीषण को लङ्का के आधिपत्य में अभिषिक्त और सन्तुष्ट भी किया।

13. **त्रयोदशः सर्ग–(सेतुबन्धनम्)** रात्रि में रामचन्द्रजी की स्थिति का वर्णन। प्रातःकाल में कुपित रामचन्द्र जी द्वारा धनुर्ग्रहण करने पर समस्त पृथिवी का संशय को प्राप्त होने का वर्णन। गङ्गाजी का अवलम्बन कर समुद्र देवता ने रामचन्द्रजी को कोप छोड़कर सेतु (पुल) बन्धन का विचार बताया। रामचन्द्र जी का अभिप्राय जानकर नील आदि वानरों द्वारा सेतुनिर्माण का वर्णन। इसके अनन्तर रामचन्द्र जी की सेना का सुबेल नामक पर्वत पर आराहण करने का वर्णन। शत्रु की सेना का युद्ध के लिए तत्पर होने का वर्णन। अन्ततः रावण के बल को जानने के लिए वानर सेना द्वारा लंका की अट्टालिकाओं पर चढ़ जाना।

14. **चतुर्दशः सर्गः–(शरबन्धः)**–इसके अनन्तर कामपीड़ित रावण ने गुप्तचरों की गति से शत्रु की शक्ति जान कर माया से बने राममस्तक से सीताजी को मोहित किया तथा लड़ने के लिए सेना भेजी। तदनन्तर वानरों और राक्षसों का दारुण संग्राम हुआ। अङ्गद और मेघनाद के संग्राम का वर्णन। इन्द्रजीत ने कुपित होकर सर्पास्त्र का आह्वान किया। उसके द्वारा सर्पास्त्र का आह्वान किया, उसके द्वारा सर्पास्त्र से राम व लक्ष्मण को पाश बद्ध करने का वर्णन। रावण की आज्ञा से सीताजी

को पुष्पक विमान में बैठाकर पाश बद्ध राम–लक्ष्मण का दर्शन करवाया। त्रिजटा का सीताजी को आश्वासन। सर्पास्त्र के बंधन से मुक्त करवाने के लिए विभीषणजी ने उपाय बताया। हनुमानजी द्वारा रण में 'धुम्राक्ष' व 'अकम्पन' राक्षस को मार गिराना। नील द्वारा 'प्रहस्त' राक्षस का वध। राक्षसों द्वारा रावण को प्रहस्त के मारे जाने की सूचना देना।

15. **पञ्चदशः सर्ग (कुम्भकण-वधः)**–प्रहस्त के वध से रावण डर गया। रावण की आज्ञा से राक्षसों द्वारा 'कुम्भकर्ण' को जगाने का वर्णन। कुम्भकर्ण राजभवन में प्रवेश। रावण–कुम्भ कर्ण संवाद। कुम्भकर्ण का युद्ध के लिए लङ्कापुरी से निकलने का वर्णन। कुम्भकर्ण का अङ्गद के साथ युद्ध का वर्णन। विभीषण के द्वारा राम और लक्ष्ण को कुम्भकर्ण के भीषण पराक्रम का वर्णन किया गया। रामचन्द्रजी की आज्ञा से सुग्रीव का कुम्भकर्ण से युद्ध का वर्णन। वानरों के साथ कुम्भकर्ण का लोमहर्षण (रोमांच उत्पन्न करने वाला) रण हुआ। लक्ष्मणजी का कुम्भकर्ण के साथ युद्ध का वर्णन। तदनन्तर रामचन्द्र जी का कुम्भकर्ण के साथ भयंकर युद्ध का वर्णन। रामचन्द्रजी द्वारा ऐन्द्र बाण से कुम्भकर्ण का वध। रावण का शोक वश होना। रावण के चार पुत्रों 'नारान्तक', 'देवान्तक', 'युद्धोन्मतः' व 'त्रिशिरा' का वानर सेना द्वारा वध का वर्णन। तदनन्तर विभीषणजी के द्वारा रामचन्द्रजी को 'अतिकाय' नामक रावणकुमार के पराक्रम का वर्णन। लक्ष्मण जी व अतिकाय का विचित्र युद्ध। रावण का विलाप। इन्द्रजीत का आश्वासन। इन्द्रजीत द्वारा राम–लक्ष्मण को मूर्च्छित करना। हनुमानजी द्वारा संजीवनी औषधि लाना। राम–लक्ष्मण का होश में आना। कुम्भ कर्ण के पुत्र 'कुम्भ' और 'निकुम्भ' का वानर सेना से युद्ध। 'कुम्भ' और 'निकुम्भ' राक्षसों का वध। वानर सेना प्रशन्न तथा मेघनाद आदि राक्षस सेनापतियों का अविच्छिन्न शोक बढ़ गया।

16. **षोडश सर्ग (रावण विलापः)**–अनन्तर बान्धवों के मारे जाने से उनको बार–बार याद करके रावण विलाप करने लगा। कुम्भकर्ण आदि को याद करके अपनी पराजय का वर्णन करने लगा। विभीषण द्वारा किए गए नीतिसमूह का वर्णन किया। रावण के द्वारा उत्साह से शत्रु को मारने का विचार करने का वर्णन। इन्द्रजीत के द्वारा उत्साह का प्रदर्शन।

17. **सप्तदश सर्ग (रावण वधः)**–इन्द्रजीत का अपने योद्धाओं के साथ युद्ध के लिए जाने का वर्णन। अनेक अपशकुनों का पकाशन।

    वानर समूह के साथ राक्षस वीरों का लोमहर्षण रण हुआ। लक्ष्मणजी के द्वारा ब्रह्मास्त्र का आह्वान करने की इच्छा करना। रामचन्द्रजी का उन्हें रोकना। इन्द्रजीत द्वारा आकाश में मायावी प्रदर्शन करने का वर्णन। विभीषणजी ने उनको प्रकृत वृतान्त बतलाया। 'विभीषण'– 'इन्द्रजीत' संवाद। तदनन्तर लक्ष्मणजी और इन्द्रजीत का अत्यंत भयंकर युद्ध हुआ और इन्द्रजीत का वध। राक्षस सेना का रावण के साथ विलाप। रावण का भयंकर युद्ध के लिए तैयारी का वर्णन। रावण का अति भयंकर रथ पर चढ़कर युद्ध के लिए आना। तदनन्तर रामचन्द्रजी और रावण का अतिभीषण और अतिप्रख्यात दारुण रण प्रवृत हुआ। रामचन्द्रजी के लिए इन्द्र ने अपना रथ व सारथि 'मातलि' को भेजा।

ब्रह्माजी द्वारा रचित अस्त्र से रामचन्द्र जी ने रावण के प्राणों को हरने का वर्णन। विभीषण का शोकाकुल होना।

18. **अष्टादश सर्ग (विभीषण प्रलाप)**–तदनन्तर रावण के वध के कारण विभीषण का विलाप। विभीषण द्वारा रावण के प्रलाप को बार–बार स्मरण करना। रावण के गुणसमूह का वर्णन। अन्त:पुर की स्त्रियों का करुण विलाप। तब रामचन्द्रजी ने 'रावण शोक करने के योग्य नहीं है' ऐसा कह कर कर्त्तव्य का उपदेश देकर विभीषण को सान्त्वना दी।

19. **ऊनविंश सर्ग (विभीषणाऽभिषेक:)**–तब रामचन्द्रजी से समाश्वासित विभीषणजी के द्वारा अपने बड़े भाई रावण का अग्नि संस्कार और जलदान आदि क्रिया करने का वर्णन। रामचन्द्र जी द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक और नीति के अनुकूल राज्य शासन के प्रकारों का वर्णन। विभीषण की समृद्धि में अपनी इच्छा की सूचना की।

20. **विंश सर्ग (सीता प्रत्याख्यानम्)**–इसके अनन्तर हनुमानजी के द्वारा सीताजी के समीप जाकर रावण आदि राक्षसों के वध का वर्णन किया। हनुमानजी के द्वारा सीताजी का संदेश रामचन्द्र जी तक पहुँचाया। रामचन्द्रजी ने अलंकृत सीता को लाने की विभीषण जी को आज्ञा दी। विभीषण जी द्वारा स्नानयुक्त अलंकृत सीता को सुवर्णमयो पालकी में लाने का वर्णन। रामचन्द्र जी द्वारा सीताजी के चरित्र पर संदेह करने का वर्णन। सीताजी का अग्नि में प्रवेश करना।

21. **एकविंश सर्ग (सीताया अग्निपरीक्षणम्)**–सीताजी की अग्नि परीक्षा में उनकी पवित्रता का प्रतिपादन हुआ। ब्रह्मा, महेश और स्वर्ग से महाराज दशरथ के द्वारा भी सीताजी के लोकोत्तर पवित्र चरित्र का वर्णन किया गया। युद्ध में प्राण त्यागने वाले वानरों का पुन: जीवित होना तथा यत्र–तत्र पेड़ों की डाली में चढ़ने का वर्णन।

22. **द्वाविंश सर्ग (अयोध्यां प्रत्यागमनम्)**–इसके अनन्तर रामचन्द्रजी ने, हनुमानजी को माताओं, भरत, नौकरों, मंत्रियों और पुरवासियों को आश्वस्त करने के निमित्त अयोध्या भेजा। हनुमानजी द्वारा जगह–जगह पर प्राप्त होने वाले देशविशेषों, मनुष्यों और गङ्गा आदि नदियों का सविस्तार वर्णन किया गया। रामचन्द्रजी द्वारा पुष्पक विमान में अयोध्या के लिए प्रस्थान करना। रास्ते में स्थान–स्थान पर प्राप्त होने वाले–सेतु, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, माल्यवान्, ऋष्यमूक, दण्डकारण्य, पम्पा आदि प्रदेशों का अनेकों प्रकार वर्णनपूर्वक सीताजी को कहते हुए रामचन्दजी अयोध्या पहुँचे। हनुमान के साथ में भरत, प्रजाओं एवं माताओं के साथ राम का स्वागत करते हैं। रामजी का राज्याभिषेक। भरतजी का यौवराज्याभिषेक वर्णन। तदनन्तर श्री रामचन्द्रजी द्वारा अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करना।

तत्पश्चात् काव्य प्रयोजन और उसके महत्त्व आदि का प्रतिपादन कर महाकवि के द्वारा ग्रंथ का समापन किया जाता है।

3. कृत् प्रत्यय, तद्धित प्रत्यय, कारक, समास एवं संधि का सामान्य परिचय –

कृत प्रत्यय– धातु के बाद में दो प्रकार के प्रत्यय जुडते है तिङ् और अतिङ्। तिङ् प्रत्ययों से क्रियारूप बनते हैं। तथा अतिङ प्रत्ययों से संज्ञा सर्वनाम आदि सुबन्त पद बनते हैं। अर्थात् जो प्रत्यय धातु के बाद जुड़कर संज्ञा एवं विशेषण आदि बनाते हैं। वे कृत् प्रत्यय कहलाते हैं और उनसे बने शब्द कृदन्त कहलाते हैं।

कर्तरि कृत्[2]– कर्ता अर्थ में कृत् प्रत्यय होते हैं।

तयोरेव कृत्यक्त खलर्थाः[3] – कृत्य प्रत्यय, क्त प्रत्यय और खलर्थक प्रत्यय भाव और कर्म में होते हैं।

कृतप्रत्यय को दो भागों में बांटा गया है। पूर्व कृदन्त व उत्तर कृदन्त। पूर्व कृदन्त के प्रत्यय प्रायः कारक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और उत्तर कृदन्त के प्रत्यय भाव एवं अव्यय अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

कृत्य प्रत्यय – कृत्य प्रत्यय तीन प्रकार के होते हैं

1. तव्यत्, तव्य 2. अनीयर् और 3. यत् ण्यत् व क्यप्, केलिमर्

जैसे– नेतव्य, नयनीय नेय, स्तुत्य, पचेलिमा आदि।

संस्कृत में प्रत्ययों की एक विशेषता है कि वह शब्द लाघव करते हैं। एक प्रत्यय पूरे वाक्य का ही बोध करा देते हैं। जैसे गन्तव्यः कहने पर उसका अर्थ हुआ जाना चाहिए। अतः प्रत्ययो द्वारा यह बोध होता है कि धातु द्वारा व्यक्त कार्य अवश्य सम्पादित होना चाहिए।

तव्यत्तव्यानीयर[4]**:–** चाहिए व योग्य अर्थ में धातुओं से तव्यत्, तव्य व अनीयर् प्रत्यय होते हैं। तव्यत् के त् की इत्संज्ञा तथा लोप एवं अनीयर् के र् की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर तव्य, एवं अनीय शेष रहता है।

1. सकर्मक धातुओं से ये प्रत्यय कर्म अर्थ में होते है। कर्म जिस लिंग विभक्ति व वचन से होता है। उसी लिंग विभक्ति तथा वचन प्रत्ययान्त का होता है। कर्ता में कर्म वाच्य होने से तृतीया विभक्ति होती है।

जैसे– 'पठितव्यः पठनीयः वा पाठः त्वया' इस वाक्य में पठ् धातु सकर्मक है इसलिए यहां तव्यत् अनीयर् प्रत्यय कर्म अर्थ में हुए हैं इनका कर्म पाठ प्रथमा विभक्ति 'एक वचन' पुल्लिंग का है अतः पुल्लिंग में पठितव्यः पठनीयः बना। स्त्री लिंग में पठितव्यां पठनीया तथा नपुंसकलिंग में पठितव्यम् पठनीयम् बनता है। जैसे– कथा पठितव्या, पठनीया। पत्रम् पठितव्यम् पठनीयम् बनता है।

कभी कभी कृत्य प्रत्यय से बने हुए शब्द केवल भविष्यत् काल का ही बोध कराते हैं। जैसे– युवयोः पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम्। तुम दोनों के पंखों बल से में भी आसानी से चला जाउँगा।

कभी कभी इन प्रत्ययों का प्रयोग भविष्यकाल के निश्चय द्योतन के लिए होता है। जैसे– लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम्। मृग मांस को चाहने वाला शिकारी निश्चय जाएगा। ततः केनापि पाठः पठितव्यः। तब उसके द्वारा ही निश्चय ही पठा पढा जाना चाहिए।

2. अकर्मक धातुओं के प्रयोग में ये प्रत्यय भाव अर्थ में होते हैं। भाव वाच्य में उनका प्रयोग सदैव नपुंसकलिंग एक वचन में होता है। और इनके कर्ता में तृतीया विभक्ति हाती है। जैसे– मया शयितव्यम् शयनीयम् वा।

इस उदाहरण में शीङ् धातु अकर्मक है इसलिए भाववाच्य में इसका प्रयोग नपुसंकलिंग एकवचन में हुआ और इसके कर्त्ता में तृतीया विभक्ति है।

कृत्यल्युटो बहुलम्[5] – कृत्य प्रत्यय एवं ल्युट् प्रत्यय बहुलता से होते हैं। बहुल चार प्रकार के होते हैं। 1. क्वचितप्रवृत्तिः 2. क्वचिदप्रवृतिः 3. क्वचिद्विभाषा, 4. क्वचिदन्यदेव। अर्थात् 1. प्रवृत्ति प्राप्ति न होने पर भी प्रवृत्त होना। 2. अप्रवृत्ति प्राप्त होने पर भी प्रवृत न होना। 3. विकल्प से प्रवृत होना। 4. किसी अन्य प्रकार से प्रवृत होना। 'स्नानीयं चूर्णम्', 'दानीयो विप्रः' इन प्रयोगों में अनीयर् प्रत्यय क्रमशः करण अर्थ एवं सम्प्रदान अर्थ में प्राप्त नहीं भी है। फिर भी बहुलम् के आधार पर 'स्नाति अनेन इति स्नानीयम्'। चूर्णम् प्रयोग में करण अर्थ में तथा दीयते अस्मैं इति दानीयो विप्रः सम्प्रदान अर्थ में 'अनीयर' प्रत्यय हुआ है। स्नान + अनीयर = स्नानीयम् दा+अनीयर् – दानीयः।

अचो यत्[6] – 'चाहिए' व 'योग्य' अर्थ में अजन्त धातु (जिसके अन्त में स्वर है।) से यत् प्रत्यय होता है। यत् के त् का इत्संज्ञक होने से लोप होता है। तथा 'सार्वधातुकाऽर्धधातुकयो'[7] सूत्र से इगन्त अंग को गुण होता है। जैसे नी+यत् में नी के इ को गुण ए होकर नेय बनता है। पुल्लिंग में नयः, स्त्रीलिंग में नया, नपुंसकलिंग में नेयम् बनता है।

यदि धातु के अन्त में आ हो तो **'ईद्यति'[8]** सूत्र से आकारान्त धातु को इकार आदेश होता है। जैसे स्था+यत्, स्थी+यत् तथा गुण होकर स्थेयम् बनता है।

पोरदुपधात[9]– जिस धातु के अन्त में 'पवर्ग' तथा उपधा में 'अ' हो उस धातु से परे भी 'चाहिए' अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। यह 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र का अपवाद है। जैसे वप्+यत् = वप्यम्, नम्+यत् = नम्यम्, लभ्+यत् = लभ्यम्, शप्+यम्– शप्यम्।

एतिस्तुशास वृदृजुष् क्यप्[10]– 'चाहिए' अर्थ में भाव व कर्म अर्थ में 'इण्' 'स्तु' 'शास्' 'वृ' 'दृ' एवं 'जुष' धातु से परे 'क्यप्' प्रत्यय होता है। क्यप् का क इत्संज्ञक है अतः उसका लोप तथा प् भी इत्संज्ञक है उसका लोप, कित् होने से 'क्ङितिच' सूत्र से धातु को गुण और वृद्धि नहीं तथा पित् होने से ह्रस्वस्य पिति कृति तुक'' सूत्र से तुक् (त्) का आगम होता है। जैसे स्तु+क्यप् = स्तुत्यः, वृ +क्यप् = वृत्य, दृ+क्यप् = दृत्य, जुष्+क्यप् = जुष्यः।

शास्+क्यप्– **''शासइदङ्हलौ''[11]** सूत्र से 'शास्' के आ को ई आदेश होकर शिस्+य = स को ष् होकर शिष्य रूप बना।

ऋहलोर्ण्यत्[12]–ऋकारान्त एवं हलन्त धातुओं से 'चाहिए' अर्थ में 'ण्यत्' प्रत्यय होता है। त् एवं ण् इत्संज्ञक होने से लोप, 'य' शेष रहता है। णित् होने से ''अचोञ्णिति'' सूत्र से अ उपधा को वृद्धि होती है, तथा 'पुगन्तलघूपधस्य च'[13] से लघु उपधा को गुण होता है जैसे–

कृ + ण्यत् – कार् + य – कार्यम्। भृ + ण्यत् – भार् + य – भार्यम्।

धृ + ण्यत् – धार् + य – धार्यम्। पठ् + ण्यत्– पाठ् + य – पाठ्यम्।

लिख् + ण्यत् – लेख् – य – लेख्यम्।

पूर्व कृदन्त – 'ण्वुल्तृचौ'[14]– कर्ता अर्थ में धातु से 'ण्वुल' तथा 'तृच्' प्रत्यय होते हैं। 'ण्वुल' का वु और 'तृच्' का तृ शेष रहता है। ण्वुल णित् होने से अन्त में वृद्धि, अ उपधा तृच् परे रहते इगन्त को **''सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः''** सूत्र से गुण तथा लघु उपधा को गुण होता है। जैसे–

पच् + ण्वुल् – पाचः + वु, पाच् + अक = पाचकः।

कृ + ण्वुल्, कार् + वु, कार् + अक = कारकः।

लिख् + ण्वुल्, लेख + वु, लेख् + अक = लेखकः।

नी + ण्वुल्, नै + वु, नै + अक = नायकः।

ण्वुल् (अक्) प्रत्यान्त शब्द का पुल्लिंग में राम के समान, स्त्रीलिंग में अक को इका होकर लता/बालिका के समान, तथा नपुंसकलिंग में फल के समान रूप होते हैं।

जैसे –

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुसंकलिंग
नायकः	नायिका	नायकम्
लेखकः	लेखिका	लेखिकम् आदि.

तृच् के उदाहारण –

कृ + तृच् कर् +तृ = कर्तृ

दा + तृच् दा + तृ = दातृ

जि + तृच् जे + तृ = जेतृ

पुल्लिंग में 'तृच्' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप कर्तृ के समान = कर्ता, कर्तारौ, कतरिः।

स्त्री लिंग में डीप् प्रत्यय जुड़कर नदी के समान = कर्त्ती, कर्त्तौ, कर्त्र्यः।

नपुंसकलिंग में कर्तृ, कतृणी, कतृणि रूप बनता है।

नन्दिग्रहिपचादिदभ्यो ल्युणिन्यचः[15] – कर्ता अर्थ में नन्द आदि धातुओं से ल्यु, ग्रह आदि धातुओं से णिनि, तथा पच् आदि धातुओं से 'अच्' प्रत्यय होता है। ल्यु का यु, णिनि का इन्, तथा अच् का अ शेष रहता है। जैसे–

'ल्यु' प्रत्यय लगाते समय इगन्त को गुण होता है तथा यु को अन।

नन्द + ल्यु = नन्द् + यु = नन्द + अन = नन्दनः।

णिनि प्रत्यय परे रहते अजन्त एवं अ उपधा को वृद्धि, लघु उपधा को गुण होता है। जैसे–

ग्रह् + णिनि = ग्रह् + इन् = ग्राह् + इन = ग्राहिन् = ग्राही

अच् प्रत्यय परे रहते इगन्त व लघु उपधा को गुण होता है। जैसे–

पच् + अच् = पच् + अ = पचः।

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः[16] – इगुपधक्षा अर्थात् जिस धातु की उपधा में इक् (इ उ ऋ लृ) हो, ज्ञा, प्री एवं कृ धातु से परे 'क' प्रत्यय होता है। 'क' के क् की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाता है, अ शेष रहता है। कित् होने से 'क्ङिति च' सूत्र से धातु के स्वर को गुण वृद्धि नहीं होती।

जैसे–

लिख् + क् = लिखः

बुध् + क = बुधः

क्षिप् + क = क्षिपः

कृश् + क = कृशः

ज्ञा + क = 'आतो लोप इटि च' सूत्र से आ का लोप = ज्ञः।

प्री + क = ईकार को इयङ् आदेश = प्रिय + अ = प्रियः

कृ + क = 'ऋृत इद् धातोः' सूत्र से ऋ को इद् आदेश = किरः।

गेहे कः[17] – 'ग्रह' धातु से कर्ता अर्थ में 'क' प्रत्यय होता है। जैसे

ग्रह + क = कित् परे होने सम्प्रसारण गृह+अ = गृहः।

कर्मण्यण्[18] – 'कर्म' उपपद रहते धातु से परे कर्ता अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। 'ण्' की इत्संज्ञा तथा लोप 'अ' शेष रहता है। णित् होने से अन्त अच् को, अ उपधा को वृद्धि तथा लघु उपधा को गुण। जैसे–

कुम्भं करोति = कुम्भ + कृ + अण् = कुम्भ + कार + अ = कुम्भकारः।

आतोऽनुपसर्गे कः[19] – उपसर्ग रहित कर्म उपपद रहने पर आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है। जैसे– कम्बलम् ददाति – कम्बल + दा + क = कम्बलदः।

धनम् ददाति = धन + दा + क = धनदः।

चरेष्टः[20] – 'अधिकरण' उपपद रहते 'चर्' धातु सें 'ट' प्रत्यय होता है। कुरूष चरति = कुरू + चरःट = कुरूचरः।

भिक्षासेनाऽऽदायेषु – सुबन्त भिक्षा, सेना तथा आदाय उपपद रहते चर् धातु से 'ट' प्रत्यय होता है।

भिक्षा चरति = भिक्षा + चर् + ट् = भिक्षाचरः सेनाचरः आदि।

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु – यदि हेतु, स्वभाव या अनुकूलता अर्थ प्रकट हो तो 'कृ' धातु से 'ट' प्रत्यय होता है। जैसे–

यशः करोति – यहाँ यश् हेतु है अतः यशस् + कृ + ट = यशस्करः।

एजेः खश्[21] – कर्म के उपपद रहते ण्यन्त एज् धातु से 'खश्' प्रत्यय होता है।

अरूर्द्विषदजन्तस्य मुम् – खिदन्त (जिस प्रत्यय में ख की इत्संज्ञा हुई है।) उत्तरपद परे होने पर अरूस् द्विषत् और अव्ययभिन्न अजन्त का अवयव मुम् (म्) होता है। 'जन + एजि' यहाँ 'मुम्' आकर 'जन म् + एजि + खश्' (अ) = 'जनमेजयः' रूप बनता है।

प्रियवशे वदः खच् – प्रिय और वश 'कर्म' उपपद रहने पर 'वद्' धातु से 'खच्' प्रत्यय होता है। प्रियम् वदति = प्रिय + वद् + खच् = प्रिय + म् (मुम्) वद ्+ अ (खच्) = प्रियंवदः।

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये[22] – जातिवाचक भिन्न, सुबन्त उपपद रहने पर स्वभाव अर्थ में धातु से 'णिनि' प्रत्यय होता है। इन् शेष रहता है।

उष्णं भुङक्ते तच्छीलः = उष्ण + भुज् + णिनि = उष्णभोजिन् = उष्णभोजी।

मनः – सुबन्त उपपद रहने पर 'मन्' धातु से 'णिनि' प्रत्यय होता है। दर्शनीयम् मन्यते = दर्शनीय + मन् + णिनि = दर्शनीयमानिन्।

आत्ममाने खश्च् – 'अपने आपको मानना' अर्थ में विद्यमान मन् धातु से सुबन्त उपपद रहते 'खश्' प्रत्यय होता है। जैसे पण्डितमात्मानं मन्यते – पण्डित मन् + खुश = मुमागम होकर पण्डितम्मन्यः।

सप्तम्यां जनेर्डः – सप्तम्यन्त उपपद रहते 'जन्' धातु से 'ड' प्रत्यय होता है। जैसे सरसि जातम् – सरस् + जन् + ड = सरोजम्।

भूतकाल के प्रत्यय क्त/क्तवतु

क्तक्तवतू निष्ठा[23] – निष्ठा

भूतकाल के अर्थ में निष्ठा संज्ञक 'क्त' व 'क्तवतु' प्रत्यय होते हैं। क्त प्रत्यय भाव व कर्म, क्तवतु प्रत्यय कर्ता अर्थ में होता है। क्त के क् इत्संज्ञक होने से लोप होता है। तथा 'त' का शेष रहता है। क्तवतु प्रत्यय के 'क्' व उ इत्संज्ञक है इनका लोप हो जाता है। 'तवत्' शेष रहता है।

क्त प्रत्यान्त शब्द का प्रयोग करने पर कर्ता में तृतीया तथा कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। क्त प्रत्ययान्त शब्द कर्म के लिंग वचन व विभक्ति के अनुसार होता है। यदि क्त प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग भाव में करते है तो कर्ता में तृतीया तथा क्त प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग एकवचन का होता है।

क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग कर्ता अर्थात् कर्तृवाच्य में होता है। तब कर्ता में प्रथमा विभक्ति तथा क्त प्रत्ययान्त शब्द कर्ता के लिंग विभक्ति तथा वचन के अनुसार होता है। तथा कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

अकर्मक धातुओं से क्त प्रत्यय भाववाच्य अर्थात् भाव में होते हैं। तथा सकर्मक धातुओं के प्रयोग में कर्मवाच्य में होते हैं।

अकर्मक धातु का उदाहरण – 'मया स्नातम्' यहां स्ना धातु अकर्मक है। इसलिए भाव में क्त प्रत्यय हुआ है।

सकर्मक धातु का उदाहरण – 'स्तुतः त्वया विष्णुः' यहाँ स्तु धातु सकर्मक। इसलिए कर्म अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ है।

क्तवतु प्रत्यय कर्ता अर्थ में 'विश्वं कृतवान् विष्णुः' यहाँ कृ धातु से कर्ता 'विष्णु' अर्थ में पुल्लिंग एकवचन प्रथमान्त है।

इच्छार्थक, पूजार्थक, बुद्धयर्थक धातुओं से वर्तमान अर्थ में भी क्त प्रत्यय होता है। वर्तमान काल में प्रयुक्त क्त प्रत्यय के कर्ता में षष्ठी तथा कर्म में प्रथमा होती है जैसे–

'प्रजानां रामः इष्टः मतः पूजितः' – प्रजायें राम को चाहती है, मानती है, पूजती है।

द्विकर्मक धातुओं के प्रयोग में क्त प्रत्यान्त के गौण कर्म में 'नी' 'हृ' 'कृष्' 'वह्' इन चार के मुख्य कर्म तथा णिजन्त धातुओं से प्रयोज्य कर्ता के अनुसार होता है। जैसे–

छात्रैः अध्यापकः श्लोकार्थः पृष्टः।

गोपालेन अजा ग्रामं नीता।

गुरूणा शिष्यः मन्त्ररहस्य बोधितः।

निष्ठासंज्ञक प्रत्यय परे रहते र् व द् को न् तथा क्त को भी न् होता है। जैसे– भिद्+क्त = भिन्नः, छिद् + क्त = छिन्न, शृ + कृत शीर्णः आदि। ओदित् धातु के पश्चात् निष्ठा के 'त' को न होता है। **(ओदितश्च)** – जैसे– भुजो (भुज + क्त = भुज् + न) = भुग्नः। 'शुष्' से परे त को क, (शुषः क) शुष्कः, पच् से परे त को व **(पचो वः)** पक्वः, धा धातु को 'हि' आदेश **(दधातेर्हि)** धा + क्त = हितम्, दा धातु को दद् (दो दद् घोः) दा + क्त = दत्तः। आदि नियम लगते है।

लिटः कानज् वा – परोक्ष भूत अर्थात् लिट् लकार के स्थान पर 'कानच्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। ककार एवं चकार का इत्संज्ञक होने से लोप होता है। 'आन' शेष रहता है। कृ + लिट् < कानच् = चक्राणः।

शतृ/शानच् प्रत्यय

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे[24]– अप्रथमान्त अर्थात् द्वितीयान्त आदि पदों के साथ लट् का अधिकरण समान हो तो लट् के स्थान पर शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं। अर्थात् वर्तमान काल में लट्लकार के स्थान पर शतृ व शानच् प्रत्यय होते हैं।

शतृ व शानच् प्रत्ययों की सत् संज्ञा होती है (तौसत्)।[25] सत् का अर्थ वर्तमान या विद्यमान होता है। शतृ का श् व ऋ इत् संज्ञक है अतः उनका लोप होकर 'अत्' शेष रहता है। शानच् का श् एवं च् इत्संज्ञक हैं अतः उनका लोप होकर 'आन' शेष रहता है।

शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं से होता है और शानच् आत्मनेपदी धातुओं से होता है। शतृ और शानच् कर्ता के विशेषण होते है। इनके लिंग व वचन विशेष्य के अनुसार होते हैं। ये दोनों प्रत्यय शित होने के कारण इनमें शप् आदि विकरण लगते हैं।

1. भ्वादिगण की धातुओं में ''कर्तरि शप्'' सूत्र से 'कर्ता' अर्थ में सार्वधातुक परे हो तो धातु से परे 'शप्' (अ) विकरण का आगम होता है– भू (शप्) + शतृ = भो (अ) + अत् = भवत्।

* शतृ प्रत्ययान्त शब्द का पुल्लिंग में भवान्, भवन्तौ, भवन्तः रूप बनता है।
* स्त्रीलिंग में उगितश्च से ङीप् (ई) तथा ''शप्श्यनोर्नित्यम्'' से नुम् (न्) का आगम होकर 'नदी' के समान – भवन्ती, भवन्त्यौ, भवन्त्यः रूप बनता है।
* नपुंसकलिंग में जगत् के समान–भवत्, भवती, भवन्ति रूप बनता है।

  सः हसन् अवदत् – वह हँसता हुआ बोला

  कदापि नरः खादन् न पठेत् – मनुष्य खाता हुआ कभी न पढ़े।

  पचन्तं चैत्रं पश्य – पकते हुए चैत्र को देखो।

* आत्मनेपदी धातुओं शानच् का प्रयोग होता है। वहाँ ''आने मुक्'' सूत्र से 'आन' परे होने पर अदन्त अंग का मुक् का आगम होता है। जैसे– पच् (शप्) + शानच् = पच + म् (मुक्) + आन = पचमान = पुल्लिंग में राम के समान स्त्रीलिंग में लता के समान तथा नपुंसकलिग में फल के समान रूप बनते है।

  पुल्लिंग – पचमानः, स्त्रीलिंग – पचमाना, नपुंसकलिंग – पचमानम्।

  पचमाना माता अवदत् – खाना पकाते हुई माता बोली

  लज्जमाना वधूः आगच्छति – लज्जाती हुई वधू आती है।

2. अदादिगण में ''अदिप्रभृतिभ्यः शपः'' सूत्र से धातुओं में शप् का लोप हो जाता है। अद् (शप्) + शतृ = अद् + अत् = अदत्।

शीङ् + शानच् = शे + आन = शयानः।

3. जुहोत्यादिगण में 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' सूत्र से धातुओं में 'शप्' के स्थान पर 'श्लु' आदेश होता है तथा ''श्लौ च'' सूत्र से धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य आदि होते है।

हु + शतृ = हु + श्लु + अत् = जुह्वत्

दा + शानच् = दा + श्लु + आन = ददानः

4. दिवादिगण में 'दिवादिभ्यः श्यन्' सूत्र से धातुओं से 'शप्' के स्थान पर 'श्यन्' आदेश होता है। श्यन् का 'य' शेष रहता है।

दिव् (शप्) + शतृ = दिव् (श्यन्) + अतृ = दीव्यत्

युध् (शप्) + शानच् = युध (श्यन्) + आन = युध्यमानः

5. स्वादिगण में 'स्वादिभ्यः श्नुः' सूत्र से धातुओं से शप् के स्थान पर 'श्नु' (नु) आदेश होता है।

सु (श्नु) + शतृ = सु (नु) + अत् = सुन्वत्

सु (श्नु) + शानच् = सु (नु) + आन = सुन्वानः

6. तुदादिगण में ''तुदादिभ्यः शः'' धातुओं में शप् के स्थान पर 'श' आदेश होता है। 'श' का 'अ' शेष रहता है।

तुद् (श) + शतृ = तुदत्

तुद् (श) + शानच् = तुदमानः

7. रूधादिगण में ''रूधादिभ्यः श्नम्'' सूत्र से धातुओं में शप् के स्थान पर 'श्नम्' आदेश होता है। श्नम् का 'न' शेष रहता है तथा मित् होने के कारण अन्तिम् अच् के पास होता है।

रूध् (शप्) + शत् = रू (न) ध् + अत् = रून्धत्

रूध् (शप्) + शानच् = रू (न) + ध् + आन = रून्धानः

8. तनादिगण में 'तनादिकृभ्यः उः' सूत्र से धातुओं में शप् के स्थान पर 'उ' आदेश होता है।

तन् (उ) + शतृ = तन्वत्

तन् (उ) + शानच् = तन्वानः

9. क्रयादिगण में ''क्रयादिभ्यः श्ना'' सूत्र से धातुओं से शप् के स्थान पर 'श्ना' 'ना' आदेश होता है।

क्री (श्ना) + शतृ = क्रीणात्

क्री (श्ना) + शानच् = क्रीणानः

10. चुरादिगण में धातुओं से ''कर्तरिशप्'' से 'शप्' का आगम होता है।

चुर् + णिच् = चोरि (शप्) + शतृ = चोरयत्

चुर् + णिच् = चोरि (शप्) + शानच् = चोरयमाणः

''लृटः सद्वा''[26] – भविष्यत् काल में लृट् के स्थान पर भी शतृ व शानच् प्रत्यय होते है।

दा + लृट् = दा + स्य + शतृ = दास्यत्

पा + लृट् = पा + स्य + शतृ = पास्यत्

गम् + लृट् = गम् (इट्) + स्य + शतृ = गमिष्यत् आदि।

''सनाशंसभिक्ष उः'' – 'तच्छील' 'तद्धर्म' और 'तत्साधुकारी' कर्ता अर्थ में 'सन्' प्रत्ययान्त; 'अ'ाशंस्' और 'भिक्ष्' धातु से 'उ' प्रत्यय होता है। जैसे–

चिकीर्ष् + उ = चिकीषुः

भिक्ष् + उ = भिक्षुः

भ्राजभासधुर्विद्युतोजिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् – तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में भ्राज्, भास्, धुर्व, द्युत, ऊर्ज, पृ; जु एव ग्राव उपपद पूर्वक 'स्तु' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप होता है। जैसे–

भास् + क्विप् = भाः

उत्तरकृदन्त

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्[27] – क्रियार्थ क्रिया के उपपद रहने पर भविष्यत् काल के अर्थ में धातु से तुमुन् (तुम्), ण्वुल प्रत्यय होते है। ण्वुल का 'वु' शेष रहता है तथा वु को 'अक' हो जाता है। जैसे–

1. कृष्णं द्रष्टुं याति।
2. कृष्णं दर्शकः याति।

उक्त वाक्यों में याति क्रियार्थ उपपद है। यहाँ दर्शन क्रिया के लिए गमन हो रहा है। अतः दृश् धातु से तुमुन् (तुम्) होकर द्रष्टुम् बना तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते है। दृश् धातु से ण्वुल प्रत्यय होकर दर्शकः शब्द बना।

कालसमयवेलासु तुमुन्[28] – कालः समय एवं वेला शब्दों के उपपद रहने पर धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय होता है। जैसे– कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

भावे – भाव अर्थ में धातु से परे 'घञ्' (अ) प्रत्यय होता है। 'भाव' दो प्रकार का होता है। साध्यावस्थापन्न और सिद्धावस्थापन्न। यहाँ सिद्धावस्थापन्न भाव में 'घञ्' होगा। 'घञ' का 'अ' शेष रहता है। जैसे– पच् + घञ् = पाकः। यहाँ ''चजो कु घिण्यतो'' सूत्र से च् को क हुआ तथा 'अ' उपधा को ''अत उपधायाः'' सूत्र से वृद्धि आ हो गया। 'घञ्' प्रत्यान्त शब्द पुल्लिंग में राम के समान बनते है तथा घञन्त के साथ कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है जैसे– भोजनस्य पाकः।

अकर्तरि च कारकेसंज्ञायाम् – संज्ञा अर्थ में कर्ता भिन्न कारक से धातु में 'घञ्' प्रत्यय होता है जैसे– रज्यते अनेन इति (रज्ज् + घञ् = रागः)।

एरच् – भाव और कर्ता भिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में इवर्णान्त धातु से 'अच्' प्रत्यय होता है। जैसे–

1. चि + अच् = चयः,
2. जि + अच् = जयः
3. नी + अच् = नयः।

ड्वितः क्त्रिः – यदि धातु का 'डु' इत् संज्ञक हो तो उससे भाव और कर्ता भिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में 'क्त्रि' प्रत्यय होता है। 'क्त्रि' का त्रि शेष रहता है। जैसे– 'डुपचष्' धातु का पच् शेष अतः वह ड्वित् है अतः–

पच + क्त्रि = पवित्र बना।

क्त्रेर्मम् नित्यम् – निर्वृत (सिद्ध) अर्थ में क्त्रि प्रत्ययान्त से सदैव 'मप्' प्रत्यय होता है। पवित्र + मप् = पवित्रमम्।

ट्वितोऽथुच् – भाव तथा कर्ता भिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में ट्वित् धातुओं से 'अथुच्' प्रत्यय होता है। 'अथु' शेष रहता है जैसे–

टुवेपृ (वेप्) + अथुच् = वेपथुः।

उपसर्गे धोः किः – भाव तथा कर्ता भिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में उपसर्ग उपपद रहते 'घु' संज्ञक धातुओं से 'कि' प्रत्यय होता है। कि का इ शेष।

उपा + आ + धा + कि = उपाधि।

स्त्रियां क्तिन् – स्त्रीलिंग भाव और कर्ता भिन्न कारक में संज्ञा अर्थ में धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। जैसे कृ + क्तिन् = कृतिः।

'ल्युट् च' – नपुंसकलिंग भाव में धातु से परे 'ल्युट्' प्रत्यय होता है। ल्युट् का 'यु' शेष रहता है तथा युवोरनाकौ से 'यु' को 'अन' हो जाता है। जैसे–

हस् + ल्युट = हसनम्, पठ् + ल्युट् = पठनम्।

''समानकर्तृकयोः पूर्वकाले[29]'' – समान कर्ता वाली (जिनका कर्ता एक ही हो) दो धातुओं में से पूर्वकाल में विद्यमान धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। क्त्वा का 'त्वा' शेष रहता है। क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते है। जैसे पीत्वा ब्रजति। यहाँ पा एवं ब्रज् दो धातुएँ है दोनों का कर्ता एक है अतः पूर्वकाल वाली पा धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ है।

''समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्[30]'' – जिस समस्त पद का पूर्व पद नञ् को छोड़कर कोई भी अव्यय हो तो क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हो जाता है। ल्यप् का 'य' शेष रहता है तथा ह्रस्वान्त को तुक् (त्) का आगम होता है। जैसे–

प्र + कृ + ल्यप् = प्रकृत्य।

तद्धित प्रत्यय -

तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः इति तद्धिताः - अर्थात् ऐसे प्रत्यय जो विभिन्न प्रयोगों में काम आ सके। तद्धित प्रत्यय धातुओं से न होकर नाम, संज्ञा शब्दों से होते हैं तथा उनका कुछ विशेष अर्थ निकालते है।

प्रातिपदिक शब्द चार प्रकार के होते हैं (1) अव्युत्पन्न शब्द यथा- डित्थ, कपित्थ आदि (2) कृत् प्रत्ययान्त शब्द यथा - कारक, कर्ता कार्य आदि। (3) तद्धितान्त शब्द जैसे शैव, मनुष्य, धनवान् आदि (4) समस्त शब्द (समास युक्त पद) यथा पीतम्बर, उपनगर भू आदि

तद्धित प्रत्यय इन चारों प्रातिपदिको तथा स्त्रीप्रत्यान्त शब्दों से हुआ करते है।

तद्धित प्रत्यय को नौ भागों में बाँटा गया है-

(1) अपत्यार्थक (2) देवतार्थक (3) सामूहिक

(4) अध्ययनार्थक (5) शैषिक (6) विकासार्थक

(7) अनेकार्थक (8) मतुबर्थक (9) स्वार्थिक

➢ **तद्धित प्रत्यय लगाने के कुछ नियम** -

1. तद्धित प्रत्यय के विधान में समर्थ परिभाषा 'समर्थ पदविधिः' प्रवृत्त होती है। अतः समर्थ पदों से ही तद्धित प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है।
2. तद्धित प्रत्ययों में समास की तरह लौकिक व अलौकिक विग्रह दो प्रकार से होते हैं।
3. तद्धित प्रत्यय उन शब्दों से होते है जिनका सन्धि कार्य हो चुका है।

4. तद्धित प्रत्यय विकल्प से होते है अतः पक्ष में वाक्य व यथा संभव समास हो सकता है।

➢ **तद्धित प्रत्ययों में मुख्य रूप से काम आने वाले सूत्र –**

1. **'तद्धितेष्वचामादेः'** – जित् व णित् (जिन प्रत्ययों के ण् व ञ्' इत्संज्ञक हो) परे हो तो शब्दों के आदि स्वर (अच्) को वृद्धि होती है। जैसे – शिव + अण् (अ) = शैव् + अ = शैवः, ईश्वर + ष्यञ् = ऐश्वर् + य = ऐश्वर्यम्।

2. **किति च** – कित् (जिस प्रत्यय में क् की इत्संज्ञा हुई हो) प्रत्यय परे हो तो आदि अच् को वृद्धि होती है। जैसे– रेवती + ठक् = रैवती + उ = रैवतिक

3. **यस्येति च** – यकारादि एवं अजादि तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हो तो शब्द के अन्त में इ तथा अ वर्ण का लोप हो जाता है। जैसे – शैव + अण् = शैव् + अ = शैवः

4. **ओर्गुणः** – यकारादि व अजादि तद्धित प्रत्यय परे हो तो उकारान्त शब्दों को गुण 'ओ' होता है। जैसे– गुरु + अण् = आदिवृद्धि, गौरु + अण् इस सूत्र से अन्त उ को गुण ओ गौरो + अ तथा अयादि होकर = गौरव पद बनता है।

5. **नस्तद्धिते** – अजादि तद्धित संज्ञक प्रत्यय परे हो तो नान्त (अन् अन्त वाले) का लोप होता है। जैसे– उपराजन् + टच् (अ) उपराज् + अ = उपराजम्।

6. **ठस्येक** – तद्धित प्रत्यय के 'ठ' को इक हो जाता है।

7. **आयनेयीनीयियः फढखच्छघां प्रत्ययादीनाम्** – 1. तद्धित प्रत्यय के आदि में आये फ को आयन्, ढ को एय, ख को ईन, छ को ईय, घ को इय आदेश हो जाता है।

8. **अश्वपत्यादिभ्यश्च** – अश्वपति आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

जैसे – अश्वपतेः अपत्यम् = अश्वपति + अण् = आश्वपतम्

गणपतेः अपत्यम् = गणपति + अण् = गाणपतम्

9. दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः – दिति अदिति आदित्य और पति, ये शब्द जिन शब्दों के अन्त में हो उन षष्ठ्यन्त सुबन्तों से अपत्य अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है ण्य का 'य' शेष।

दितेः अपत्यम् – दिति + ण्य = दैत्यः

प्रजापतेः अपत्यम् – प्रजापति + ण्य = प्राजापत्यः

10. दैवाद्यञञौ – देव शब्द से अपत्य अर्थ में यञ् और अञ् प्रत्यय होते है।

देव + यञ् (य) = देव्यम्

देव + अञ् = देवः

11. तस्यापत्यम् – सन्धि किये गये षष्ठयन्त पदों से अपत्य अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते है– उपगु + अञ् = औपगु + अ = औपगवः।

12. उत्साऽऽदिभ्योऽञ् – उत्स आदि शब्दों से अपत्य आदि अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

जैसे– उत्सस्य अपत्यम् = उत्स + अञ् = औत्सः।

13. गर्गादिभ्यो यञ् – गर्ग आदि षष्ठयन्त सुबन्त पदों से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है।

जैस – गर्गस्य गोत्रापत्यम् – गर्ग + यञ् = गार्ग + य = गार्ग्यः

वत्सस्य गोत्रापत्यम् – वत्स + यञ् = वात्स + य = वास्त्यः

14. **सर्वैकान्यकिंयत्तदः कालेदा** – सर्व, एक, अन्य किं यत् तद् शब्दों से काल अर्थ में दा प्रत्यय होता है।

जैसे– सर्व + दा = सर्वदा।

15. **पञ्चम्यास्तसिल्, 'पर्यभिभ्यां च'** – संज्ञा, सर्वनाम के बाद पञ्चमी के अर्थ में तथा परि व अभि उपसर्ग के बाद तसिल् (तस्) प्रत्यय होता है।

जैसे – परि + तसिल् = परितः

16. **सप्तम्यास्त्रल्** – सर्वनाम तथा विशेषण के बाद सप्तमी अर्थ में त्रल् प्रत्यय होता है।

जैसे – सर्व + त्रल् = सर्वत्र

17. **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ, अतिशायने तमबिष्ठनौ** – दो में से एक का अतिशय बताने के लिए तरप् तथा ईयसुन् तथा दो से अधिक में से एक की अतिशय बताने के लिए तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते है।

जैसे – लघु + तरप् = लघुतरः, लघु + तमप् = लघुतमः

लधु + इष्ठन् = लधिष्ठः लघु + ईयसुनः = लधियः

18. **तेन रक्तं रागात्** – जिससे रंगा जाय उस रंग वाची शब्द में अण् प्रत्यय होता है। जैसे– कषाय + अण् = काषायम्।

19. **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** – यह इसका है या इसमें में इन अर्थों में मतुप् (मत्) प्रत्यय होता है।

जैसे– गौ + मतुप् (मत्) गोमत् = गोमान् (पुल्लिङ्ग)।

20. **अत इनिठनौ** – आकारान्त शब्द से इनि (इन्) तथा उन् (ठ) प्रत्यय होता है। जैसे– दण्ड + इनि = दण्डिन् = दण्डी, दण्ड + ठन् = दण्ड + इक = दण्डिकः।

21. **तस्य भावस्त्वतलौ** –भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए त्व एवं तल् प्रत्यय होते हैं।

गुरु + त्व = गुरुत्वम्, गुरु + तल = गुरुत + टाप् = गुरुता।

22. **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** – वर्णवाची शब्दों (नील, शुक्ल आदि) तथा दृढ आदि के बाद इमनिच् या ष्यञ् (य) प्रत्यय भाव अर्थ में होते है।

जैसे – मधुरस्य भावः = मधुर + इमनिच् (इमन्) = मधुरिमन् = मधुरिमा मधुर + ष्यञ् = माधुर्यम्।

23. **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वति** – जब किया के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाये उसमें वति (वत्) प्रत्यय लगते है

जैसे– ब्राह्मणेन तुल्यम् = ब्राह्मण + वति = ब्राह्मण्डवत्।

24. **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** – ग्राम, जन, बन्धु गज सहायक शब्दों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होता है।

जैसे– जन + तल् = जन + त + टाप् = जनता।

25. **तस्येदम्** – यह इसका है इस अर्थ में जिसका संबंध बताना हो तो उसमें अण् प्रत्यय होता है– देवस्य अयम् = देव + अण् = देवः।

26. **तस्य विकारः** – जिस वस्तु से बनी हुई कोई अन्य वस्तु प्रतीत हो उसमें अण् प्रत्यय होता है। जैसे– मृतिका + अण् = मार्तिकः।

27. **मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** – खाने पहनने की वस्तुओं को छोड़कर अन्य वस्तुओं से विकार तथा अवयव अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है। जैसे– सुवर्णस्य विकारः – सुवर्ण + मयट् = सुवर्णमयम्।

कारक – क्रिया के सम्पादन में जिन शब्दों का उपयोग होता है उन्हें कारक कहते है। कारक का क्रिया के साथ सीधा संबंध होता है।

कारक अर्थ में प्रयुक्त विभक्ति को ''कारक विभक्ति''[३१] कहा जाता है। कारक से भिन्न अथवा किसी पद के योग में आने वाली विभक्ति को 'उपपद-विभक्ति' कहा जाता है।

कारक सात प्रकार के होते है आर इनकी विभक्तियाँ भी सात प्रकार की होती है।

1. कर्त्ता कारक 2. कर्म कारक 3. करण कारक
4. सम्प्रदान कारक 5. अपादान कारक 6.सम्बन्ध कारक
7. अधिकरण कारक

1. कर्त्ता कारक (प्रथमा विभक्ति) – कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति का पयोग होता है। जैसे– रामः पठति। प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिणामवचन मात्रे च प्रथमा[३२] (2/3/46) प्रथमा विभक्ति का प्रयोग केवल शब्द का अर्थ बताने के लिए या केवल लिङ्ग बताने के लिए या परिमाण या वचन बताने के लिए ही होता है। प्रातिपदिक का अर्थ है 'शब्द' और प्रत्यय शब्द का कुछ नियत अर्थ होता है। जब किसी शब्द का कोई अर्थ निकालना हो तो उस शब्द में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग करते है। लिङ्ग का अर्थ ऐसे शब्दों से होता है जिनमें लिङ्ग नहीं होता। जैसे – (उच्चैः नीचै = अव्यय) और ऐसे शब्द जिनका लिङ्ग नियत है इनको छोड़कर शेष शब्दों के अर्थ और लिङ्ग दोनों प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जाने जाते है। जैसे– तटः, तटी, तटम्।

परिमाण – जैसे सेरो गोमूध, (एक सेर गेहूँ) यहाँ प्रथमा विभक्ति से सेर का नाप विदित है। वचन = वचन संख्या को कहते है।

जैसे – एकः, द्वौ, बहवः

सम्बोधने च (2/4/47) = सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

2. कर्म कारक (द्वितीया विभक्ति) – कर्मणि द्वितीया (2/3/2) कर्ता जिसको बहुत चाहता है उसे कर्म कहते है तथा कर्म में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है।

जैसे – रामः विद्यालयं गच्छति।

अन्तरान्तरेण युक्त[३३] (2/3/4) अन्तरा, अन्तरेण शब्दों की जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है। उसमें द्वितीया विभक्ति होती है।

जैसे – गंगा यमुनां च अन्तराः प्रयागः अस्ति।

(अभितः परितः समयानिकषा हा प्रतियोगेऽपि वा.) अभितः, परितः, समया, निकषा, हा, प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे- ग्रामम् अभितः वनं।

अधिशीङ्स्थासां कर्म (1/4/46) अधि उपसर्ग पूर्वक शीङ् स्था तथा आस् धातुओं की क्रिया को आधार कर्म संज्ञक होता है।

जैसे – शिष्यः आसनम् अधितिष्ठति।

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीया मेड्रितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।

उभयतः सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः तथा अध्यधि शब्दों की जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें भी द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है।

जैसे – ग्रामम् उभयतः/ग्रामं सर्वतः जलं अस्ति।

3. करण कारक (तृतीया विभक्ति) –

साधकतमं करणम्[३४] – (1/4/42) – क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक को करण कहते है।

कर्त्तृकरणयोस्तृतीया (2/3/18) सूत्र से करण में तृतीया विभक्ति होतीहै तथा कर्म वाच्य और भाव वाच्य के कर्त्ता में भी तृतीया विभक्ति ही होती है।

जैसे – सः कन्दुकेन क्रीडति।

येनाङ्गविकार – (2/3/20) यदि शरीर के किसी अङ्ग में विकृति दिखाई पड़े तो विकृत अङ्ग के वाचक शब्द में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त होती है।

जैसे – नेत्रेण काणः

इत्थंभूतलक्षणे – (2/3/21) जिस चिन्ह से किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध होता है उसमें तृतीया विभक्ति होती है।

जैसे – जटाभिः यति। किम्, कार्यम् अर्थ और प्रयोजनम् के साथ भी तृतीया विभक्ति होती है। जैसे- मूर्खेण पुत्रेण किम्।

हेतौ – (2/3/23) कारण (हेतु) बोधक शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे- सः अध्ययनेन वसति।

4. सम्प्रदान कारक (चतुर्थी विभक्ति) –

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्[३५] (1/4/32) दान के कर्म के द्वारा कर्ता जिसे सन्तुष्ट करना चाहता है वह पदार्थ सम्प्रदान कहलाता है और सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे- विप्राय धनं ददाति।

रूच्यर्थानां प्रीयमाण[३६] – (1/4/33) रूच् अर्थ वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कारक कहलाता है जिसमें चतुर्थी सम्प्रदाने (2/3/31) सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे- बालकाय मोदकं रोचते।

क्रुधद्रुहेर्ष्यार्थानां यं प्रति कोपः[३७] – (1/4/37) क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य, अयूय धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ वाले धातुओं के योग में जिस पर क्रोध किया जाता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे- पिता पुत्राय क्रुध्यति।

नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलंवषड् योगाच्च (2/3/16) – नमः स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे- गुरुवे नमः।

5. अपादान कारक[३८] (पंचमी विभक्ति)

ध्रवुमपायेऽपादानम् (1/4/24) **(अपादाने पञ्चमी)** (2/3/28) जिससे कोई वस्तु अलग हो, उसे अपादान कहते है। अपादान में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे- वृक्षात् पत्राणि पतन्ति।

भीत्रार्थानां भयहेतुः (1/4/25)भय और रक्षा अर्थ वाली धातुओं के साथ भय के कारण में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे- चौरात् बिभेति।

6. सम्बन्ध कारक (षष्ठी विभक्ति) -

षष्ठी शेषे[३९] – (2/3/50) सम्बन्ध का बोध कराने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे- रामस्य पुस्तकम्।

षष्ठी हेतु प्रयोगे[४०] – (2/3/26) हेतु (प्रयोजन) शब्द के साथ षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे- अन्नस्य हेतोः वसति।

निमित्त पर्याय प्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्[४१] (वा.) – निमित्त या उसके अर्थवाचक शब्दों के प्रयोग होने पर सर्वनाम एवं निमित्त वाचक शब्दों में प्रायः समस्त विभक्ति का प्रयोग होता है। किं निमित्तं वसति।

7. अधिकरण कारक (सप्तमी विभक्ति) -

आधारोऽधिकरणम् (1/4/45) **सप्तम्यधिकरणे च** (2/3/36) क्रिया के आधार को अधिकरण कहते है। अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है।

जैसे – विद्यालये पठति।

यतश्च निर्धारणम्[४२] (2/3/41) – जब किसी वस्तु की अपने समुदाय से किसी विशेषण द्वारा कोई विशिष्टता दिखाई जाती है तब समुदाय वाचक शब्द से षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति आती है।

जैसे –

कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः।

जीवेषु जीवानां वा मानवाः श्रेष्ठः।।

आयुक्त कुशलाभ्यां चासेवायाम् (2/3/40) **साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः** (2/3/43) संलग्न अर्थ वाले शब्दों और चतुर अर्थ वाले शब्दों के साथ सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे- कार्ये लग्नः अस्ति।

सन्धि –जब किसी शब्द में दो वर्ण निकट आने पर मिल जाते है, तो उनके मेल से उत्पन्न होने वाले विकार को सन्धि कहते है। सन्धि में जब वर्णों या अक्षरों का परस्पर मिलन होता है,

तब अक्षर या अक्षरों के रूप में जो परिवर्तन हो जाता है। उसे सन्धि कहते है। जैसे– जगत् + नाथ = जगन्नाथः, जगत् + ईशः = जगदीशः।

अक्षरों के विकार के आधार पर ही सन्धि के तीन भेद होते है। (1) स्वर सन्धि (2) व्यंजन सन्धि (3) विसर्ग सन्धि।

1. **अकः सवर्णे दीर्घः**[43] – जब ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बाद ह्रस्व या दीर्घ स्वर आवें तब दोनों के स्थान पर दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे– क्षिति + ईश = क्षितीशः।
2. **अदेङ् गुणः/आद्गुणः**[44] – यदि अ या आ के बाद इक् (इ,ई,उ,ऊ,ऋ,लृ) आवें तो दोनों के स्थान पर क्रमशः गुणसंज्ञक ए, ओ, अर्, अल् होता है।

राजा + ऋषि = राजर्षि, महा + उदयः = महोदयः

* किन्तु अक्ष के ऊहिनी, स्व के ईर या ईरिन् आये तो वृद्धि होगी। जैसे – अक्षौहिणी, स्वैर, स्वैरिन्।
* प्र के बाद ऊह, ऊढ, एषः एष्य आये तो भी वृद्धि होती है जैसे– प्रौहः, प्रौढः, प्रैषः, प्रैष्यः।
* तृतीया तत्पुरूष में अ वर्ण के बाद ऋत आये तो वृद्धि होती है। सुख + ऋत = सुर्खातः। अवर्णान्त उपसर्ग के बाद ऋ से शुरू होने वाली धातु आये तो भी वृद्धि होती है। जैसे– प्र + ऋच्छति = प्राच्र्छति

3. **वृद्धिरेचि/वृद्धिरादैच्** – यदि अ या आ के बाद ए, ऐ, ओ, औ आये तो क्रमशः ऐ, ऐ, ओ, औ हो जाता है।

अद्य + एव = अद्यैव, तथा + एव = तथैव

4. **इकोयणचि** – यदि इक् (इ,ई,उ,ऊ,ऋ,ॠ,लृ) के बाद असमान स्वर आये तो इनको क्रमशः य् य् व् व् उ् र् ल् होता है।

यदि + अपि = यद्यपि इति + आह = इत्याह

5. **एचोऽयवायावः** – ए, ओ, ऐ, औ के बाद कोई भी स्वर आये तो इनको क्रमशः अय्, अव्, आय् और आव् हो जाता है।

शे + अनम् = शयनम् वटो + ऋक्ष = वटवृक्षः

6. **एङ पदान्तादति** – पदान्त ए, ओ के बाद ह्रस्व 'अ' आवे तो दोनों को पूर्वरूप हो जाता है। इसके लिए 'ऽ' अवग्रह चिन्ह का प्रयोग करते है।

हरे + अव = हरेऽव वृक्षे + अस्मिन् = वृक्षेऽस्मिन्

* गो के बाद इन्द्र आवे नित्य गवेन्द्र बनता तथा अन्य अच् आवे तो अवङ् होता है। गो + अग्रम = गवाग्रम्।

7. **एङि पररूपम्** – अकारान्त उपसर्ग के बाद ए, ओ से शुरू होने वाली धातु हो तो दोनों को पररूप होता है– उप + ओषति = उपोषति, प्र + एजते = प्रेजते।

* **शकन्धु** – आदि शब्दों में भी पररूप होता है।

शक + अन्धु = शकन्धु मनस् + ईषा = मनीषा आदि।

8. **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** – यदि द्विवचान्त शब्द के अन्त में 'ई' ऊ एवं ए आवे और उनके बाद स्वर आवे तो सन्धि नहीं होती है। मुनी + इमौ = मुनी इमौ, साधू + एतौ = साधू एतौ, गंगे + अमू = गंगे अमू।

* 'अदस्' शब्द के म के बाद ई व ऊ आवे, स्वरात्मक अव्ययों के बाद स्वर आवे, ओकारान्त अव्यय के बाद स्वर आवे तो सन्धि नहीं होते है।

2. व्यंजन सन्धि[45]

1. **स्तोः श्चुना श्चुः –** यदि स् एवं त वर्ग के योग में श् एवं च वर्ग हो तो स् एवं त वर्ग को श् एवं च वर्ग होता है किन्तु श् से परे नहीं। सत् + चित् = सच्चित्, यज् + न = यज्ञ।
2. **ष्टुना ष्टुः[46] –** ष् एवं ट वर्ग के योग में स् एवं त वर्ग को ष् एवं ट वर्ग होता है। किन्तु पदान्त ट वर्ग से परे नहीं होता है।
   इष् + त = इष्टः, तत् + टीका = तट्टीका, कृष् + न = कृष्णः।
3. **झलां जशोऽन्ते:** – पदान्त झलों को जश् आदेश होता है। अर्थात् वर्गों के प्रथम द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं ऊष्म वर्णों को अपने वर्ग का तीसरा अक्षर होता है। जैसे– वाक् + ईशः = वागीशः, षट् + आननः = षडाननः, वाक् + हरिः = वाग्हरिः।
4. **झलां जश् झशि** – झलों को जश् आदेश होता है यदि झश् परे हो तो। जैसे बुध् + ध = बुद्धः, लभ् + ध = लब्धः।
5. **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा –** पदान्त यर् (ह को छोड़कर सभी व्यंजनों) के बाद यदि अनुनासिक हो तो यर् को अपने वर्ग का पंचवा वर्ण हो जायेगा। जैसे– दिक् + नाग = दिङ्नाग, सद् + मतिः = सन्मतिः, जगत् + नाथः = जगन्नाथः।
6. **झयो होऽन्यतरस्याम् –** झय् (वर्गों के 1,2,3,4) के बाद ह् हो तो ह् को विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है। जैसे–
   तद् + हितः = तद्धितः, अच् + ह्रस्वः = अज्झ्रस्वः।
7. **खरि च** – खर् परे हो तो झलों को चर् आदेश होता है। जैसे– सद् + कारः = सत्कारः, दिग् + पालः = दिक्पालः।
8. **शश्छोऽटि –** पदान्त झय् के बाद श् को छ होता है यदि शकार से परे अट् हो तो। तद् (तत्) + शिवः = तच्छिवः, सत् + शीलः = न सच्छीलः।
9. **मोऽनुस्वारः** – यदि हल् व्यंजन परे हो तो पदान्त मकार को अनुस्वार होता है। हरिम् + वन्दे = हरिंवन्दे, सत्यम् + वद = सत्यंवद।
10. **नश्चाऽपदान्तस्य झलिः –** झल परे हो तो अपदान्त मकार एवं नकार को अनुस्वार होता है। जैसे– यशान् + सि = यशांसि, नम् + स्यति = नंस्यति।
11. **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः –** अनुस्वार के बाद 'यय्' हो तो अनुस्वार को परसवर्ण हो जाता है– अं + कः = अङ्कः, शाम् + तः = शान्तः।
12. **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् –** ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण्, न् हो और उसके बाद कोई स्वर हो तो बीच में क्रमशः ङ्, ण्, न् हो जाता है। प्रत्यङ + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईश = सुगण्णीश, सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः।
13. **नश्छव्यप्रशान् –** पद के अन्तिम न् को 'रू' (ः स्) होता है यदि छव्, (छ, ठ, थ, च, ट, त, व) बाद में हो और छव् के बाद अम् हो तो। महान् + छेदः = महांश्छेदः।
14. **'छे च' –** ह्रस्व स्वर के बाद 'छ' हो तो बीच में तुक् (त्) का आगम होता है तथा श्चुत्व से 'च्' हो जाता है।
    स्व + छन्दः = स्वच्छन्दः, मातृ + छायाः = मातृच्छाया।

3. विसर्ग सन्धि[47]

1. **'ससजुषो रूः'** – पदान्त स् को रू तथा 'सजुष्' शब्द के ष् को 'रू' (र्) होता है। रामस् = रामरू = रामार्।
2. **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** – अवसान या खर् परे हो तो 'र' को विसर्ग होता है। जैसे– रामर् = रामः।
3. **विसर्जनीयस्य सः** = खर् परे हो तो विसर्ग को सकार होता है (श एवं च, छ हो तो श) (ष, ट, ठ हो तो 'ष') होगा।
   विष्णुः + त्रायते = विष्णुस्त्रायते
   रामः + षष्ठः = रामष्षष्ठः
   रामः + शेति = रामश्शेते।
4. **अतोरोरप्लुतादप्लुते** – अप्लुत अत् से परे रू (र, :) को उ होता है, यदि अप्लुत अत् परे हो तो। (आद्गुण एवं परस्प भी होगा)
   शिवः + अर्च्यः = शिव उ + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः
   कः + अयम् = क + उ + अयम् = कोऽयम्।
5. **हशि च** – अप्लुत् अत् से परे रू (: र्) को 'उ' आदेश होता है यदि हश् परे हो तो। शिवः + वन्दे – शिव + उ + वन्दे = शिवोवन्दे, रामः + गच्छति = रामोगच्छति।
6. **रोरि/द्रलोपेपूर्वस्य दीर्घोऽण्** – र् के बाद र् आये तो एक 'र्' का लोप हो जाता है तथा उससे पूर्व अण् (अ, इ, उ) को दीर्घ हो जाता है। पुनर् + रमते = पुनारमते, शम्भुः + राजते = शम्भुराजते।
7. **एततदोः सुलोपोऽकोरनञसमासे हलि** – सः और एषः के विसर्ग के परे व्यंजन हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। (सकः, एषकः, असः, अनेषः के विसर्ग का लोप नहीं)।
   सः + गच्छति = स गच्छति, एषः + विष्णुः = एष विष्णुः।

समास

'सम्' उपसर्गपूर्वक 'अस्' धातु से मिलकर समास शब्द बना है। दो या दो से अधिक शब्दों के योग को समास कहते है। शब्दों की विभक्ति हटाकर उन्हें एक साथ जोड़ने की क्रिया की जाती है। इस प्रकार से मिला हुआ समस्त पद अथवा सामासिक पद कहा जाता है। समास की क्रिया द्वारा वाक्य को पद के समान लघु बनाया जाता है। समास का अर्थ है–संक्षेप।
उदाहरण के लिए– नराणां पतिः नरपतिः।

समस्त पद को पृथक् करके विभक्ति आदि लगाने की क्रिया को समास विग्रह कहते है। समास में पहला पद पूर्व पद तथा दूसरा पद उत्तर पद कहलाता है।

समास के भेद – समास छह प्रकार के होते है–

1. अव्ययी भाव समास (केवल समास)　　2. तत्पुरूष समास
3. कर्मधारय समास　　4. द्वन्द्व समास
5. द्विगु समास　　6. बहुब्रीहि समास

1. अव्ययी भाव –

जिसमें पहला पद अव्यय होता है तथा दूसरा पद कोई संज्ञा शब्द होता है वहाँ अव्ययी भाव समास होता है। जैसे–

अधि हरि　=　हरौ

उपकृष्णम् = कृष्णस्य समीपम्

निर्जनम् = जनानाम् अभावो

अनुरथम् = रथस्य पश्चात्

यथाशक्ति = शक्तिम् अनतिक्रम्य

2. तत्पुरूष समास –

जिस समास में उत्तर पद प्रधान हो वहाँ तत्पुरूष समास होता है। विग्रह करने पर इसमें द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी तथा सप्तमी आदि विभक्तियों का प्रयोग होता है।

द्वितीया तत्पुरूष – समास की अवस्था में इसमें द्वितीया विभक्ति का लोप पाया जाता है, विग्रह करने पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते है। जैसे–

ग्रामगतः = ग्रामं गतः

गजारूढः = गजं आरूढः

तृतीया तत्पुरुष – समास की अवस्था में यहाँ तृतीया विभक्ति का लोप पाया जाता है। जैसे–

विद्याहीनः = विद्यया हीनः

अग्निदग्धः = अग्निना दग्धः

गुरूसदृशः = गुरूणा सदृशः

मदरहित = मदेन रहितः

चतुर्थी तत्पुरुष – समास की अवस्था में यहाँ चतर्थी विभक्ति का लोप पाया जाता है तथा विग्रह पर चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

गोहितम्= गवे हितम्

धनलोभः = धनाय लोभः

सुखार्थम् = सुखाय अर्थम्

पंचमी तत्पुरूष – समास की अवस्था में यहाँ पंचमी विभक्ति का लोप पाया जाता है। जैसे–

अश्वपतितः = अश्वात् पतितः

सिंहभयम् = सिंहात् भयम्

रोगान्मुक्तः = रोगात् मुक्तः

षष्ठी तत्पुरूष – इनमें पहला पद षष्ठी विभक्ति का होता है। समास की अवस्था में उसका लोप पाया जाता है। जैसे–

धर्मदण्डः = धर्मस्य दण्डः

सुवर्णमुद्रा = सुवर्णस्य मुद्रा

गृहस्वामी = गृहस्य स्वामी

सप्तमी तत्पुरूष – समास की अवस्था में यहाँ सप्तमी विभक्ति लोप पाया जाता है। जैसे–

कार्यकुशलः = कार्ये कुशलः

जलमग्नः = जले मग्न

शास्त्र दक्षः = शास्त्रेषु दक्षः

नञ् तत्पुरूष – जहाँ निषेध नामक शब्द (न) प्रकट करने के लिए प्रारम्भ में 'अ' अथवा 'अन' जोड़ा जाता है, वहाँ नञ् तत्पुरूष समास होता है। जैसे–

अपूज्यः	=	न पूज्यः	अयोग्य	=	न योग्यः
अनागतः	=	न आगतः	अकुशलः	=	न कुशलः

3. कर्मधारय समास –

जहाँ विशेषण (जो शब्द विशेषता प्रकट करता है) और विशेष्य (जिस शब्द की विशेषता बतलाई जाए) दोनों ही शब्द हो। वहाँ कर्मधारय समास होता है। जैसे–

नीलोत्पलम् = नीलम् उत्पलम् = नीला कमल

दीर्घनेत्रम् = दीर्घम् नेत्रम् = बड़ा नेत्र

नवनीत कोमलम् = इव कोमलम् = मक्खन के समान कोमल

घनश्याम = घन इव श्याम = बादल के समान काला

4. द्वन्द्व समास –

जिस समास में दोनों या सभी पद प्रधान हो तथा विग्रह की दशा में 'च' शब्द हो तो द्वन्द्व समास होता है। जैसे–

कन्दमूलफलानि = कन्दं च मूलं च फलं च

रामलक्ष्मणौ = रामश्च लक्ष्मणश्च

हस्तपादौ = हस्तौ च पादौ च

पितरौ = माता च पिता च

5. द्विगु समास –

जहाँ पहला पद संख्यावाची हो तथा दूसरा पद संज्ञा हो तो वह द्विगु समास होता है। जैसे–

पंचगवम् = पंचानां गवां समाहारः

नव रत्नम् = नवानां रत्नानां समाहारः

त्रिभुवनम् = त्रयाणां भुवनानां समाहारः

शताब्दी = शतानां अब्दानां समाहारः

6. बहुब्रीहि समास –

जिस समास में अनेक पद होते हुए भी किसी की भी प्रधानता न हो तो विग्रह करने पर अन्य पद की प्रधानता हो तथा कोई अन्य ही अर्थ निकले वहाँ बहुब्रीहि समास होता है। जैसे–

निर्मलायाम् = निर्मलाः आप यस्मिन् तत् (सरोवर)

चन्द्रशेखरः = चन्द्रः शेखरे यस्य सः (शिव)

लम्बोदरः = लम्बः उदर यस्य सः (गणेश)

4. शाब्दबोध के विषय में मीमांसक मत

वाक्यों के द्वारा जो बोध (ज्ञान) होता है उसे वाक्यार्थ बोध या शाब्दबोध कहते हैं। वाक्य भी आख्यातांत ही होता है–

1. सुबंतचयः वाक्यम्
2. तिङ्न्तचयो चयोवाक्यम्
3. सुप्तिइन्तचयो वाक्यम्

उसमें ये तीन पक्ष हैं, जिनमें कारकान्वित क्रिया होनी चाहिए। अमरकोश के अनुसार–

''तिङ् सुबन्तचयो वाक्यं क्रिया वा

कारकान्विता।

अर्थात् सुबन्त और तिङन्त वाक्यों का कारकान्वित क्रिया पर्यवसान होता है। पूर्वमीमांसा में कुमारिल भट्ट, प्रभाकर और मुरारी के तीन मत प्रसिद्ध हैं, किन्तु अन्तिम में ''त्रिपाद नीति नयन'' इस नाम से ख्यात ग्रन्थ भी विदित हुआ है। मीमांसकों में अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधान नाम से दो प्रस्थान प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रथम कुमारिल भट्ट और द्वितीय प्रभाकर का मत है। शब्द बोध में भावना को मुख्य रूप से भट्ट ने स्वीकार किया है। प्रभाकर ने कार्य को मुख्य रूप से स्वीकार किया है। अभिहितान्वय शब्द का अर्थ यह है– पदों से प्रतिपादित पदार्थ, ज्ञान आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति समन्वित होकर लक्षणा के द्वारा शाब्दबोध (वाक्यार्थ बोध) कराते हैं।

न्यायमत में पदों की पदार्थ में शक्ति और पद ज्ञान लक्षण या बोध कराते हैं। पदों से पदार्थ की उपस्थिति होती है। इसी प्रकार मीमांसा में कहा गया है–

''ज्योतिष्टोमेन स्वर्ग कामो यजेत।'' यहाँ 'यजेत' में दो अंश हैं। 'यज' धातु और 'त' प्रत्यय। प्रत्यय आख्यात अंश को लेकर आर्थी भावना का प्रतिपादन करता है। उस भावना की तीन आकांक्षाएँ होती हैं– साध्य, साधन और इतिकर्त्तव्यता। साध्याकांक्षा होने पर (स्वर्गकामाधिकरण से) स्वर्ग का साध्यत्वेन अन्वय होता है। साधनाकांक्षा होने पर धात्वर्थ का कारणत्वेन अन्वय होता है। (भावधिकरण न्याय से)। इतिकर्तव्यता आकांक्षा होने पर (दक्षिणीयादि) इतिकर्तव्यतात्वेन अन्वय होता है। वाक्यार्थाधिकरण में कहा गया है–

भावनैव वाक्यार्थः सर्वत्राख्यातवत्तया।
अनेक गुण जात्यादि कारकार्थानुराजिता।।

विशिष्ट अर्थ का बोध करने के लिए वाक्य लोक में प्रयुक्त होता है। पदश्रवण से पदार्थों का पृथक पृथक ज्ञान होता है। यह वाच्यार्थ है, किन्तु जो पदार्थज्ञान होता है वह श्रोता को अभिप्रेत नहीं और जिसके लिए वाक्य प्रयुक्त हुआ उससे श्रोता का कार्य नहीं होता, ऐसे स्थल में वाक्य तात्पर्य की अनुपपत्ति होती है। अतएव अनुपपत्ति के निवारणार्थ लक्षण मानी गयी है। सभी दार्शनिकों ने तात्पर्यानुपपत्ति को लक्षणा का बीज स्वीकार किया है। पदों के दो प्रकार के तात्पर्य माने गये हैं। प्रथम अवान्तर तात्पर्य पदार्थ विषय का प्रतिपादन करता है और द्वितीय महातात्पर्य वाक्यार्थ विषय का प्रतिपादन करता है। अभिहितान्वयवाद में वाक्य से वाक्यार्थ का बोध लक्षणया होता है। कुमारिल भट्ट ने निम्न श्लोकों से प्रतिपादन किया है–

साक्षात् यद्यपि कुर्वन्ति पदार्थप्रतिपादनम्।
वर्णास्तथापि नैतस्मिन् पर्यवस्यन्ति निष्फले।।
वाक्यार्थमितये तेषां प्रवृत्तों नान्तरीयकम।
पाके ज्वालेव काष्ठानां पदार्थ– प्रतिपादनम्।।

शब्द के व्यापार :–

बालकः और गच्छति दो पद हैं। बालक की आकृति के विश्लेषण बालक प्रातिपादिक +सु विभक्ति – के साथ बालकः पद का शाब्दबोध भी होता है अर्थात् यह भी ज्ञात होता है कि बालक का संकेत व्यक्तिविशेष है और वह एकवचन में है। यही नहीं आकृति का अध्ययन वाक्य में उस पद के प्रयोग को भी स्पष्ट करता है। बालक+सु से बालक व्यक्ति के कर्तृत्व का ज्ञान होता है, जिसेस बालकः पद के वाक्य में स्थान का भी निर्णय होता है। बालकः का प्रयोग कर्तृवाच्य वाक्य में सदा कर्ता के रूप में ही होगा, अन्य किसी रूप में नहीं, इसका निर्धारक

उससे युक्त 'सु' विभक्ति अर्थात् शब्द का रचनातत्व है। इसी प्रकार 'गच्छति' का विश्लेषण करने पर उस पद का अर्थ स्पष्ट होता है। 'गच्छति' की आकृति में गम् धातु और तिप् विभक्ति है। इस आकृति से एकवचन में वर्तमानकालिक गमन क्रिया का बोध होता है। इतना ही नहीं, इससे स्पष्ट होता है कि इसका प्रयोग वाक्य में सदा अन्य पुरूष के लिए ही हो सकता है। इस प्रकार जहाँ कहीं भी शब्द या पद की आकृति का अध्ययन किया जाता है वहाँ साथ ही साथ उसके अर्थ और प्रयोग के स्वरूप का भी अध्ययन किया जाता है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य में व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन का उल्लेख किया गया है—

रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।

(व्याकरण महाभाष्य)

रक्षा, उह, आगम, लघु और असन्देह के अन्तर्गत व्याकरण के ध्वनि पक्ष, शब्द पक्ष और अर्थ पक्ष तीनों का अन्तर्भाव हो जाता है।

जिस प्रकार रक्षा के लिए शब्द के ध्वनि पक्ष का अध्ययन किया गया उसी प्रकार आगम के लिए शब्द के अर्थ पक्ष का और लघु तथा असन्देह के लिए शब्द के आकृति पक्ष का। इस प्रकार पतञ्जलि द्वारा परिगणित व्याकरण के अध्ययन के प्रयोजनों का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि प्राचीनकाल से ही भारतीय वैयाकरण व्याकरण के अन्तर्गत न केवल शब्द के रूप को अपितु उसकी मूलभूत ध्वनि और उसके अर्थ को भी अध्ययन का अनिवार्य अंग मानते थे।

व्याकरण का स्वरूप मूलतः शब्द पर आधारित है और चूँकि शब्द का संबंध मनुष्य के विचारों से होता है अतः शब्दाशास्त्र की परिधि अत्यधिक विस्तृत हो जाती है। व्याकरणशास्त्र में सामान्य रूप से स्वीकृत नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के अतिरिकत वैशेषिकों द्वारा परिगणित जातिव्यक्ति, समानाधिकरण्य, समवाय गुण द्रव्य, संबंध आदि भी व्याकरण की धारणा के अन्तर्गत आ जाते हैं। व्याकरण—दर्शन के ग्रन्थों में शक्ति पर भी विचार किया गया है। शक्ति का विवेचन उसे न्याय—वैशेषिक की चिन्तन पद्धति से अलग कर देता है, क्योंकि वैशेषिकों ने शक्ति को व्याकरणिक कोटि के रूप में स्वीकार नही किया है।

वैयाकरणों ने जाति और व्यक्ति दोनों को शब्द का वाच्य माना है। सभी वैयाकरणों ने दोनों को शब्द का वाच्य माना हो ऐसी बात नहीं, किन्तु समग्र रूप से देखने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सामान्यतः जाति और व्यक्ति दोनों को वाचय मानना इनको अभिप्रेत था : जैसे वाजप्यायन ने शब्द की शक्ति जाति में मानी है और व्याडि ने व्यक्ति में। शब्द और अर्थ में व्याडि ने अर्थ को अधिक महत्व दिया है और पद तथा वाक्य के निर्णय का आधार भी वे अर्थ को ही मानते हैं।[48]

भर्तृहरि व्याडि से सहमत प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्होंने भी पद और अथ्र के निर्धारण का आधार वाक्यार्थ को ही माना है—

न हि किञ्चित् पदं नाम रूपेण नियतं क्वचित्।
पदानां रूपमर्थो वा वाक्यार्थादेव जायते।।[49]

भर्तृहरि पद की स्वतन्त्र सत्ता नही मानते। वे वाक्य को अखण्ड और भाषा की इकाई मानते हैं। किन्तु व्यवहार में चूंकि पद का प्रयोग देखा जाता है और लोक में उसकी सत्ता भी मानी जाती है : इसलिए वे पद की सत्ता भी स्वीकार करते हैं। वाक्य को मुख्य मानने के कारण पद के रूप या अर्थ का आधार भी वे वाक्य बतलाते हैं। पतञ्जलि का दृष्टिकोण मध्यममार्गी है। उन्होंने

जाति या व्यक्ति में से किसी एक पर बल न देकर दोनों को शब्द का वाच्य माना है जाति और व्यक्ति पर सविस्तर विचार नामार्थं के प्रकरण में किया जाएगा।

मुकुलभट्ट ने चतुष्टयी शब्दप्रवृत्ति के सिद्धान्त की स्थापना के क्रम में पूर्वपक्ष के रूप में इस सिद्धान्त का उल्लेख किया है।

''गुणक्रियायदृच्छाशब्दानामपि जातिशब्दात्वाच्चतुष्टयी शब्दप्रवृत्तिर्नोपि पद्यते।''[50]

पाणिनी शब्दों के चार भेद स्वीकार करते प्रतीत होते हैं, क्योंकि जाति, गुण और क्रियाशब्दों से सम्बद्ध हो तो उनके अनेक सूत्र हैं ही, कैयट का विचार है कि अर्थवदधातुर प्रत्ययः प्रातिपदिकम्[51] सूत्र की रचना द्रव्यशब्द की मान्यता के आधार पर की गयी है। वे कहते हैं अर्थवत् सूत्र की रचना से ऐसा प्रातीत होता है कि अव्युत्पन्न यदृच्छा शब्दों की सत्ता है। अर्थवत् सूत्रारम्भाच्च अव्युत्पन्न यदृच्छाशब्दाः सन्तीति अवगम्यते।[52] कैयट ने ही यदृच्छा शब्द का लक्षण भी बतालाया है। यदृच्छा शब्द का लक्षण भी बतलाया है। यदृच्छाशब्द नाम के अनुसार ही वक्ता की इच्छा के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। उस शब्द का प्रयोग वक्ता अपने अनुसार करता है न कि उसकी अर्थगत प्रवृत्ति के अनुसार। किसी भी वस्तु या व्यक्ति का नामकरण यादृच्छिक शब्द का बडा सुन्दर उदाहरण है, क्योंकि नामकरण सदा शब्द के अर्थ को ध्यान में रखकर नही किया जाता । बिना वसुदेव का पुत्र हुए भी किसी का नाम वासुदेव हो सकता है। इसलिए नाम प्रायः यादृच्छिक हुआ करते हैं। कैयट ने इन शब्दों की प्रवृत्ति का निर्देश करते हुए कहा है ''अर्थगतं प्रवृत्ति निमित्तमनेपेक्ष्य : शब्दः प्रयोगक्त्रभिप्रायेणैव प्रवर्तते स यदृच्छा शब्दो डित्थादिः।''[53] वक्ता की इच्छा पर आश्रित होने के कारण कभी कभी स्वरूप से निरर्थक शब्दों का भी प्रयोग नाम के रूप में होता है।

प्रत्येक शब्द या तो नाम है या क्रिया। किन्तु यह विभाजन इतना स्थूल है कि भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता की गहराई में इसके द्वारा नहीं जाया जा सकता है।

अन्विताभिधानवादी आचार्यों की तरह द्वारा वाक्य से शब्द की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानी गई। इनके अनुसार वाक्य ही भाषा की इकाई है। वाक्य से अलग शब्द का कोइ अस्तित्व नहीं होता। यह सिद्धान्त निम्नलिखित कारिका में अत्यन्त स्पष्ट रूप से उपस्थिापित किया गया है –

पदे न वर्णा विधन्ते वर्णष्वयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।।[54]

भर्तृहरि के अनुसार भी भाषा की मूल इकाई वाक्य ही है।

धात्वर्थ सभी शब्दों का मूल होता है। फल के अनुकूल किया गया व्यापार धातु का अर्थ कहलाता है। अर्थात् फल के लिए फल प्राप्ति तक किया गया व्यापार धातु का अर्थ कहलाता है।

धात्वर्थ या धातु के अर्थ के विषय में शास्त्रकारों के मत भिन्न भिन्न हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

1. **मीमांसक मत–** मीमांसकों के अनुसार धातु का अर्थ केवल फल है। व्यापार अर्थ तो आख्यात प्रत्यय का है। शाब्दबोध में आख्यातार्थ व्यापार प्रधान होता है।
2. **प्राचीन नैयायिक मत –** धातु का अर्थ केवल व्यापार है। फल की प्रतीति द्वितीयादि से होती है। शाब्दबोध में प्रथमान्तार्थ विशेष्य रहता है।

3. **नव्यनैयायिक मत–** फल एवम् व्यापार दोनों धातु के अर्थ हैं। किन्तु शाब्दबोध प्रथमान्त प्रधान ही होता है।
4. **प्राचीन वैयाकरण मत–** धातु के अर्थ फल और व्यापार हैं। खण्डशः शक्ति हैं। शाब्दबोध व्यापार मुख्य– विशेष्यक ही होता है।
5. **नागेशभट्ट का मत –** फल एवम् व्यापार दोनों धातु के अर्थ हैं। विशिष्ट शक्ति है अर्थात् कर्तृप्रत्ययस्थल में फलविशिष्ट व्यापार–विशेष्यक और कर्मप्रत्यय–स्थल में व्यापार विशिष्ट फल विशेष्यक शाब्दबोध होता है।

आख्यातार्थ –

मीमांसक–मत में आख्यात प्रत्यय का अर्थ 'भावना' है। नैयायिक मत में 'कृति' है। वैयाकरणों के मत में कर्ता तथा कर्म के साथ साथ संख्या एवं काल ये चार अर्थ हैं।

1. मीमांसक– मतानुसार शाब्दबोध–

चैत्रः तण्डुलं पचति– तण्डुल माध्यमिका (तण्डुलसाध्किा) पाककरणिका चैत्रकर्तृ का भावना।

कर्म प्रत्यय में भी आख्यातार्थ भावना ही मुख्य विशेष्य रहती है।

2. नैयायिकमतानुसार–

रामः ग्रामं गच्छति। इस कर्तृप्रत्यय में– ग्रामाभिन्न–उत्तरप्रदेश–संयोगानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमान् रामः। रामेणः ग्रामः गम्यते– इस कर्मप्रत्यय में– रामवृत्तिकृतिजन्यगमनजन्य फलशाली ग्रामः यह प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यक बोध होता है।

3. प्राचीन वैयाकरण– मतानुसार–

रामाभिन्नकर्तृकः ग्रामभिन्नकर्मकः उत्तरप्रदेश संयोगानुकूल व्यापारः। रामेण ग्रामः गम्यते यहाँ भी उक्त व्यापार मुख्य विशेष्यक ही शाब्दबोध होता है।

4. नागेशभट्ट– रामः ग्रामं गच्छति –

यहाँ कर्तृप्रत्यय में तो उपर्युक्त ही बोध होता है। किन्तु रामेण ग्रामः गम्यते–
इस कर्म प्रत्यय में फल मुख्यविशेष्यक बोध होता है–
रामकर्तक – वर्तमान कालिक– व्यापारजन्यो ग्रामाभिन्न कर्मनिष्ठ
संयोगः – यह व्यापारविशेषणक फलविशेष्यक शाब्दबोध होता है। भावप्रत्ययस्थल में कोई अन्तर नहीं है।

सभी शब्दों की व्युत्पत्ति धातु से मानने के कारण धात्वर्थ पर विचार किया जाता है।

वैयाकरणों के मत में धातु का अर्थ फल और व्यापार है अर्थात् फल के अनुकूल किया गया व्यापार है। धातु के अर्थ के विषय में मीमांसकों एवम् नैयायिकों का मत वैयाकरणों से भिन्न है।

1. **मीमांसकों को मत–** इनके अनुसार 'धातु' का अर्थ केवल फल है और आख्यात का अर्थ व्यापार है। इनके अनुसार धातु का वाच्य व्यापार नहीं है (अर्थात् भावना) क्योंकि भावना सम्बन्धी शाब्दबोध विवादग्रस्त है। शाब्दबोध में कभी भी भावना की प्रतीति नहीं होती है। केवल लिंङ् लकार में ही उसकी प्रतीति होती है, वहाँ भी वह धातु का वाच्य नहीं अपितु तिङ् का वाच्य है।

वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जुषा पृ.39 : अत्र प्राभाकारा फलमेव धात्वर्थः

भावना तु वाच्यमेव न तद् विषयक शब्दबोध्यस्य।
विवादग्रस्तत्वात् लिङ्येव परं सा आख्यात वाच्या।।

वैयाकरण मीमांसकों के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है, क्योंकि धातु को केवल फल का वाचक मानने पर कृ धातु का यत्न रूप फल अर्थ मानना पडेगा और ऐसी स्थिति में यत् धातु के समान कृ धातु को अकर्मक मानना पडेगा, क्योंकि यत्न और यत्नानुकूल व्यापार दोनों एक का आश्रय कर्ता ही होता है। नागेश भट्ट व्यापार को ही धातु का अर्थ मानते हैं–

फलानुकूल यत्नसहितो व्यापारों धात्वर्थः। (परमलघुमञ्जुषा पृ. 121)

नैयायिकों का मत – मीमांसकों के उक्त मत से नैयायिक भी असहमत है। प्राचीन नैयायिकों के अनुसार धातु का अर्थ मात्र 'व्यापार' है। फल अर्थ का बोध तो कर्म कारक में प्रयुक्त द्वितीया विभक्ति के प्रत्यय से होता है–

क्रियामात्रं धात्वर्थः। फलञ्तु कर्मप्रत्ययेन बोधयते।

(न्यायकोश, पृ.39)

नव्य नैयायिकों के अनुसार धातु फली के जनक व्यापार का वाचक होता है।

वैयाकरणों का मत –

वैयाकरण में सर्वप्रथम पाणिनी का नामआता है। इन्होंने अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ में ''भूवादयों धातवः'' सूत्र में धातु की परिभाषा दी है। पाणिनी ने धात्वर्थ के लिए 'भाव' और 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया है–

भावनाश्च 3.3.11
भावे 3.3.18
तुमुनार्थच्च भाववचनात् 2.3.15
तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.3.10
क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः।

महाभाष्यकार ने भी क्रिया शब्द का प्रयोग व्यापार और फल के अर्थ में किया है तथा उन्हें धात्वर्थ माना है। इन्हीं अर्थों में भाव शब्द का प्रयोग किया है–

धातुरेव क्रियामाह अर्थोऽपि कश्चिद् गम्यते विक्लिप्तिः।
कारकणां प्रवृत्तिविशेषः क्रिया।
भवंन भावः (भावयते यः स भावः। भावचनो धातुः।)

(म.भा. 3.1.1)

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि धातु का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

यावत्सिद्धमसिद्ध वा साध्यत्वेनाभिधीयते।
आश्रितकर्मरूपत्वात् सा क्रियेत्यभिधीयते।।

(वा.प. 3.8.1)

अर्थात् चाहे सिद्ध हो अथवा सिद्ध न हुआ हो परन्तु जिसे साध्य के रूप में कहना अभीष्ट हो या जिसका स्वरूप क्रमविशेष या पौर्वापर्य पर आश्रित रहता है, वहीं क्रिया है।

भट्टोजिदीक्षित तथा कौण्डभट्ट ने धात्वर्थ के रूप में फल और व्यापार को स्वीकार किया है। (वै.भू.सा.कारिका)।

इनके अनुसार फल से अभिप्राय है विक्तित्ति फलं विक्लित्यादि (वहीं)

अर्थात् चावल आदि का गलना और व्यापार से अभिप्राय है साध्य के रूप में कही जाने वाली क्रिया :–

व्यापाररस्तु भावनाऽभिधा साध्यत्वेनाऽभिधीयमाना क्रिया। (वहीं)

फल का वाच्यार्थ फल शब्द पारिभाषिक शब्द है–जो किसी धातु के अर्थ व्यापार अर्थात् क्रियाकलापजन्य हो तथा जो उसी धातु का अर्थ हो, उसे फल कहा जाता है।

तद्धात्वर्थ– जन्यत्वे सति तद्धात्वर्थत्वं फलत्वम्।

(वै.भू.सा. भैमी.व्या.पृ.17)

यथा– 'विक्लित्ति'– रूप फल 'पच्' धातु के व्यापार से उत्पन्न होता है। तथा वह 'पच्' के अर्थ में अन्तर्भूत है। जो किसी धातु के वाच्यभूत फल को उत्पन्न करता हुआ उसी धातु का वाच्य रहता हैउ उसे व्यापार कहते हैं वे–

तद्धात्वर्थ – फल– जनकत्वे सति

तद्धातुवाच्यत्वं फलत्वम्। (वही पृ.सं. 18)

संदर्भ सूची

1 'वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्'-आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, १/१४

2 वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (गोकुलदास संस्कृत ग्रंथमालाद्ध सूत्र संख्या 3/4/67

3 वही सूत्र संख्या 3/4/70

4 वही सूत्र संख्या 3/1/96

5 वही सूत्र संख्या 3/3/113

6 वही सूत्र संख्या 3/1/97

7 वही सूत्र संख्या 7/3/84

8 वही सूत्र संख्या 6/4/64

9 वही सूत्र संख्या 3/1/98

10 वही सूत्र संख्या 3/1/109

11 वही सूत्र संख्या 6/4/34

12 वही सूत्र संख्या 3/1/124

13 वही सूत्र संख्या 7/2/115

14 वही सूत्र संख्या 7/3/86

15 वही सूत्र संख्या 3/1/34

16 वही सूत्र संख्या 3/1/134

17 वही सूत्र संख्या 3/1/144

18 वही सूत्र संख्या 3/2/1

19 वही सूत्र संख्या 3/2/3

20 बृहद् अनुवाद चन्द्रिका (चक्रधर नौटियाल हँस शास्त्री) पृ.सं. 443

21 वही सूत्र संख्या 2/2/28

22 वही सूत्र संख्या 3/2/78

23 वही सूत्र संख्या 3/2/78

24 वही सूत्र संख्या 3/2/124

25 वही सूत्र संख्या 3/2/127

26 वही सूत्र संख्या 3/3/14

27 वही सूत्र संख्या 3/3/10

28 वही सूत्र संख्या 3/3/167
29 वही सूत्र संख्या 3/4/21
30 वही सूत्र संख्या 7/1/37
31 संस्कृत शिक्षण (डॉ. प्रभा शर्मा) पृ.सं. 139
32 वृहद् अनुवाद चन्द्रिका (चक्रधर नौटियाल हंस शास्त्री) पृ.सं. 137
33 वही, पृ.सं. 187
34 वही, पृ.सं. 156
35 वही. पृ.सं. 160
36 वही, पृ.सं. 162
37 वही, पृ.सं. 163
38 वही, पृ.सं. 167
39 वही, पृ.सं. 173
40 वही, पृ.सं. 174
41 वही, पृ.सं. 181
42 वही, पृ.सं. 182
43 वृहद् अनुवाद चन्द्रिका – चक्रधर नौटियाल हंस शास्त्री, पृ.सं. 13
44 स्नातक संस्कृत व्याकरणम् – डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ.सं. 11
45 वृहद् अनुवाद चन्द्रिका – चक्रधर नौटियाल हंस शास्त्री, पृ.सं. 18
46 लघुसिद्धान्त कौमुदी (चन्द्रकला व्याख्या) – जगदीश संस्कृत पुस्तकालय – डॉ. अर्कनाथ चौधरी, पृ.सं. 36
47 वृहद् अनुवाद चन्द्रिका – चक्रधर नौटियाल हंस शास्त्री, पृ.सं. 23–27
48 त्रिपाठी रामसुरेश, संस्कृत व्याकरणदर्शन, पृ.11
49 वाक्यपदीयः 1/14 हरिवृत्ति : पृष्ठ 42 : रामसुरेश त्रिपाठी के व्याकरण दर्शन में पृ.11 पर उद्धृत।
50 मुकुलभट्ट, अभिघावृत्तिमातृका, पृष्ठ–5।
51 पाणिनीः अष्टाध्यायी 1. 2. 45 : पृष्ठ 12।
52 कैयटः प्रदीप, ऋलृक् प्रत्याहार सूत्र पर टीका : व्याकरण महाभाष्य ।
53 कैयट : प्रदीप, ऋलृक, प्रत्याहारसूत्र पर टीका : व्याकरणमहाभाश्य।
54 भर्तृहरि : वाक्यपदीय : 1.73 : पृ.142.